शैक्षिक
संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-26, नवंबर 1998 - अप्रैल 1999

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य, कोठी बाज़ार
होशंगाबाद – 461 001
फोन: 07574 – 53518

वार्षिक सदस्यता (6 अंक) : 50 रुपए
(ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं)

मुखपृष्ठ: चंद्रमा की सतह से लिए गए इस चित्र में धरती ऊपर उठती हुई दिख रही है। यानी जिस तरह आप चंद्रमा की कलाएं पृथ्वी से देखते हैं उसी तरह चंद्रमा से भी पृथ्वी की कलाएं देखी जा सकती हैं। चित्र में आप पृथ्वी की जितनी बड़ी कला देख रहे हैं, गौर करें तो चंद्रमा की अष्टमी नवमीं की कला कुछ-कुछ ऐसी दिखती है।

धरती का आधा हिस्सा हमेशा प्रकाशित होता है जिसे हम दिन कहते हैं और आधे हिस्से में अंधेरा होता है जिसे हम रात कहते है। इस प्रकाशित हिस्से का जितना हिस्सा आप चित्र में देख पा रहे हैं वो कला के रूप में आपके सामने है। अंधेरे वाले हिस्से से प्रकाश परावर्तित नहीं हो रहा है इसलिए वह दिखाई नहीं दे रहा। लेकिन है तो वह भी वहीं प्रकाशित कला के साथ ही।

पिछला आवरण: ऑस्ट्रेलिया में एडियाकरा पहाड़ियों पर मिले प्रीकैम्ब्रियन जीवाश्म की एक तस्वीर। एडियाकरा जीवाश्मों ने ही प्रीकैम्ब्रियन चट्टानों में जीवाश्म खोज के काम को आगे बढ़ाया था।

इस अंक में निम्न किताबों से चित्र लिए गए हैं: *साइंटिफिक अमेरिकन*, मई 1971; *इवोल्यूशनरी एनालिसिस* – स्कॉट फ्रीमैन, जॉन सी. हैरॉन, प्रकाशक: प्रेंटिस हॉल, न्यू जर्सी 1998; *द फ्लैमिंगोज़ स्माइल* – स्टीफन जे. गूल्ड, प्रकाशक: पेंगुइन बुक्स 1985; *आऊट लुक*, अक्टूबर 1998।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित

सम्पादकी

हमने कुछ अंक पहले संदर्भ को हर दो महीनों में एक बार आप तक पहुंचाने की बात कही थी। लेकिन हमें काफी अफसोस के साथ कहना पड़ रहा है कि हम ऐसा नहीं कर पाए। विशेष तौर पर यह अंक तो आप तक बहुत ही देरी से पहुंच रहा है।

मार्च में जबकि इस अंक का काफी काम हो चुका था हमारे कम्प्यूटर में आई तकनीकी खराबी के कारण हमें सारा काम दुबारा से करना पड़ा। आप यह सवाल भी कर सकते हैं कि यह तो इस बार की बात हुई संदर्भ तो पहले से देर से निकलती रही है?

संदर्भ जैसी पत्रिका में जिस तरह की सामग्री को लगातार दिया जा रहा है उस सामग्री को जुटाना भी एक कठिन कार्य है। अंग्रेज़ी या दूसरी भाषाओं से सामग्री अनुदित करने की भी एक सीमा है। स्तरीय सामग्री लगातार न मिल पाना देरी का एक प्रमुख कारण है। सामग्री को जुटाने में आप भी हमारी मदद कर सकते हैं। विज्ञान अथवा किसी अन्य विषय में रुचि रखने वाले किसी भी व्यक्ति (जो आप स्वयं या आपके परिचित भी हो सकते हैं) को संदर्भ के पुराने एक दो अंक दिखाकर उनसे अनुरोध कीजिए कि वे संदर्भ के लिए लेख लिखने की कोशिश करें। शायद इसी तरह की कोशिशों से स्तरीय सामग्री का अभाव दूर हो सकेगा और हम संदर्भ को नियमितता के साथ आप तक पहुंचा सकेंगे।

परन्तु एक बात यहां साफ करना ज़रूरी है कि चाहे अंक कितनी भी देरी से निकलें, अगर आप संदर्भ के वार्षिक सदस्य हैं तो आपको 6 अंक यानी लगभग छह सौ पन्ने की सामग्री ज़रूर मिलेगी।

एक और सूचना, पूना की एक संस्था ने संदर्भ का मराठी में अनुवाद करके दो नमूना अंक तैयार किए हैं। मराठी संदर्भ महज हिन्दी संदर्भ का अनुवाद नहीं है। इसमें काफी सामग्री मौलिक भी है। यदि आप या आपके किसी परिचित की मराठी पढ़ने में रुचि है तो उनका नाम पता हमें भेजिए। हम उन्हें मराठी संदर्भ की एक प्रति बतौर नमूना भेजेंगे।

आशा है आपका सहयोग हमें पहले की तरह मिलता रहेगा।

सम्पादक मंडल
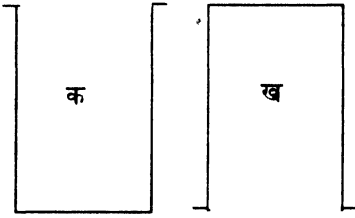
चित्र में दो बीकर दिखाए गए हैं। एक सीधा रखा हुआ है व दूसरा उल्टा रखा है। तो हवा का दबाव:

अ. बीकर 'क' में ज़्यादा है।

ब. बीकर 'ख' में ज़्यादा है।

स. दोनों में बराबर है।

जब हवा न बहे तो 17

हाल ही में शिक्षकों के एक समूह के साथ हवा के दबाव की चर्चा हुई। चर्चा के दौरान शिक्षकों को सवालों से भरा एक पर्चा भी दिया गया। बिलकुल सामान्य से दिखने वाले इन सवालों के कैसे जवाब आए। आप भी इन सवालों के बारे में सोचकर देखिए।

क्यूं है रात अंधेरी 22

पहले-पहल तो यही लगता है यह भी क्या सवाल हुआ? रात में सूरज नहीं दिखता इसलिए अंधेरा होता है। और थोड़ा गहराई में जाएंगे तो सवाल उठता है कि हमारी आकाशगंगा में ही सूर्य से ज़्यादा रोशनी वाले तारे हैं फिर भी रात रोशनी से नहाई हुई क्यों नहीं होती? बस दिखते हैं काले आसमान में टिमटिमाते कुछ तारे......। सदियों से यह सवाल जिज्ञासुओं को परेशान करता रहा है।
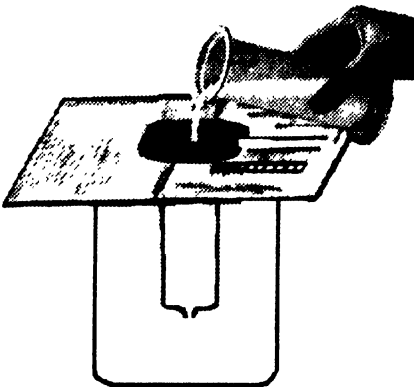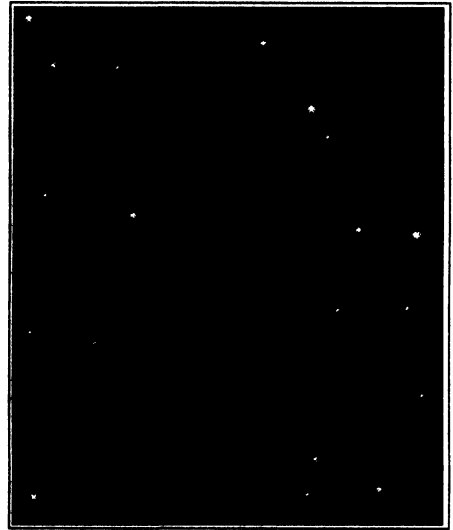
काली स्याही अलग-अलग. . 56

इस बार आपको कॉलम क्रोमेटोग्राफी से रु-ब-रु करवा रहे हैं। इससे दो मकसद पूरे होते हैं: यह पता करना कि मिश्रण में कौन-कौन से पदार्थ हैं और मिश्रण में मौजूद पदार्थों को शुद्ध रूप में अलग-अलग प्राप्त करना।
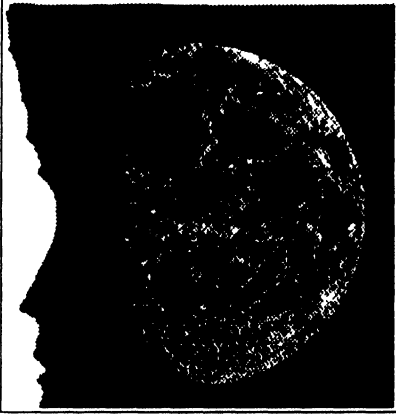
चंद्रमा: सवालों के जवाब.. 62

पिछले दो अंकों से चंद्रमा पर सवाल पूछे जा रहे थे। सही जवाबों का आपको भी इंतज़ार होगा। इस बार देखिए जो आपने परखा था वह किस हद तक सही था....।

इक आग का दरिया है 76

आग जैसी मामूली-सी चीज़ पर भी यूनान में एक वर्ग विशेष का कब्ज़ा होता था। प्रोमेथियस ने जनसाधारण को आग सुलगाने का तरीका बताया था। बस यही उसकी खता थी। उस पर मुकदमा चलाया गया और सज़ा भी दी गई। और भी बहुत कुछ है इस यूनानी दंतकथा में.......।

शैक्षिक संदर्भ

अंक 26, नवंबर 98 - अप्रैल 99

इस अंक में

मैं संदर्भ का लगभग एक वर्ष से नियमित पाठक रहा हूं। इससे पहले मैं इस पत्रिका के बारे में बिलकुल भी नहीं जानता था। किन्तु एक बार कबाड़ वाले के ठेले से यह मुझे मिली, जहां किसी नासमझ व्यक्ति ने इसे बेच दिया होगा। पढ़ने के बाद मुझे उस व्यक्ति पर तरस आया जिसने इस पत्रिका को, जिसका प्रत्येक अंक संग्रहणीय होता है, रद्दी समझ कर बेच दिया था। खैर, मैं उस गुमनाम व्यक्ति को धन्यवाद प्रेषित करता हूं जिसने मेरा परिचय संदर्भ से करवाया। उस दिन के बाद से मैं इस पत्रिका का नियमित पाठक रहा हूं। यदि देखा जाए तो यह पत्रिका अपने आप में एक संपूर्ण पत्रिका है जिसमें गंभीर से गंभीर बात को भी तथ्यपूर्ण वैज्ञानिक विश्लेषण करके इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि कोई भी व्यक्ति इसे समझ सकता है। यह पत्रिका अपनी अनूठी भाषा शैली व अनोखे प्रस्तुतिकरण के कारण अपनी अलग ही पहचान रखती है। इस पुस्तक की भाषा, वैज्ञानिक विश्लेषण, दुर्लभ चित्र तथा रोचक तथ्य इस पत्रिका को अन्य पत्रिकाओं से बिल्कुल अलग रखने में सक्षम हैं। यूं तो इस पत्रिका में कई विशेषताएं हैं किन्तु हर सिक्के के दो पहलू होते हैं। अतः इस पत्रिका के लिए मैं कुछ सुझाव भेज रहा हूं। विश्वास है कि आप इन पर गौर फरमाएंगे।

- जिस प्रकार से पत्रिका का मुख व अंतिम पृष्ठ रंगीन दिया जाता है उसी प्रकार से पत्रिका के मध्य में भी कुछ रंगीन चित्र हों तो अच्छा रहेगा।
- यद्यपि पत्रिका में उन पुस्तकों का विवरण होता है जिनसे लिए गए चित्र पत्रिका में प्रकाशित होते हैं किन्तु फिर भी चित्र को पहचानना मुश्किल होता है कि कौन-सा चित्र किस पुस्तक से लिया गया है। अतः आप चित्र के नीचे उसकी स्रोत पुस्तक का नाम भी लिखें।
- पत्रिका में आप एक सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता (विज्ञान की) भी प्रारंभ करें जो अलग-अलग विषयों पर आधारित हो जैसे जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान आदि। इससे पाठकों को अपनी बौद्धिक क्षमता बढ़ाने का अच्छा अवसर मिल सकेगा।
- इस पत्रिका के रूप में कभी-कभी विशेषांक भी दिया करें जिसमें किसी भी विषय विशेष पर विस्तृत जानकारी मिल सके।
- पत्रिका बहुत लेट आती है। जैसे मुझे 26वां अंक नवंबर या दिसंबर में पहुंच जाना चाहिए था

लेकिन अभी तक नहीं मिला है। आप इस ओर पूरा ध्यान दें कि पत्रिका पाठक के पास नियत समय पर पहुंचे। मेरा 26वां अंक भी आप अवश्य पहुंचाएं।

शशि कुमार जोशी
भिनाय, अजमेर, राजस्थान

क्योंकि 14वें अंक से हमारे स्कूल ने संदर्भ की सदस्यता ली हुई है इसी वजह से 14वें अंक से ही मैं इसका पाठक हूं। मैं सांप्रदायिक शिक्षा व्यवस्था को बिल्कुल पसंद नहीं करता इसलिए संदर्भ के अनुभूति मूलक लेख मुझे बहुत प्रेरणा देते हैं।

अंक 18 में प्रोफेसर यशपाल का जो भाषण छपा था वह वर्तमान शिक्षा व्यवस्था पर काफी सटीक बैठता है। लार्वा से वयस्क प्रजापति निकलने की प्रक्रिया का हमारे स्कूल के विज्ञान क्लब के बच्चे पहले से निरीक्षण कर चुके थे, और जब उन्होंने इसके बारे में 24-25वें अंक में पढ़ा तो बहुत खुश हुए।

चंद्रमा के बारे में अंक 22-23 में पूछे गए सवाल के जवाब मैंने आपके यहां भेजे थे, लेकिन बाद में जब मैंने आकाश का निरीक्षण किया तो पाया कि कृष्ण पक्ष में चंद्रकला के बारे में भेजे गए मेरे उत्तर सही नहीं थे। इस पक्ष में चंद्र का ऊपर से क्षय होता है। वास्तव में रोज़ देखकर भी चांद के बारे में यह सब नहीं जानना हमारे लिए खेद की बात है।

जगदीश ब्रह्मचारी, शिक्षक
बाबुपलि, सोनपुर, उड़ीसा

टॉलस्टोय का उपन्यास 'बचपन-किशोरावस्था-युवावस्था' पढ़ते-पढ़ते रात्रि के बारह बज गए। उपन्यास एक तरफ रखा व आंखें मूंदे लेटा रहा, इस इंतज़ार में कि एक-डेढ़ बजे और मैं आसमान में आतिश-बाज़ी देख सकूं। परन्तु न जाने कब आंख लग गई। ढाई बजे एक बीमार बच्चा आपातकालीन कक्ष में आया तो मुझे क्वार्टर से बुलवाया गया। बच्चे से फारिग हो मैं अस्पताल की हवाई-पट्टी जैसी खुली छत पर जा पहुंचा। नवंबर महीने का हल्का जाड़ा था। आसमान साफ व खुला था। अंधेरी रात में शांत व ठहरे-ठहरे तारे एक आकर्षक भाव-भंगिमा पैदा कर रहे थे। निगाहें उत्तर दिशा में 45 डिग्री पर आकाश में स्थिर थीं। ध्यान से देखा। लो एक जगह पर एक फुलझड़ी-सी जलती दिखी। यही तो उल्का पिण्डों की बौछार थी। यही तो आसमान में उल्का पिंडों द्वारा खेली जा रही दीपावली थी जो मैंने 18 नवंबर, 1998 की रात को हांसी जैसे अलसाए शहर में देखी। टेम्पल

टटल कॉमेट के पृथ्वी ग्रह के भूमंडल में प्रवेश करने पर यह स्वागती आतिशबाज़ी मनोहारी दृश्य पैदा कर रही थी। और फिर यह खगोलीय दीपावली आती भी तो 33 बरसों में एक बार है।

वह ज़माना भी ज़्यादा पुराना नहीं जब इस किस्म की खगोलीय घटनाओं को लोग ईश्वर का प्रकोप समझते थे। और सन् 1998 की इस घटना का आलम तो यह था कि मेरे मित्र की दो नन्हीं बेटियां रात को अलार्म लगाकर सोईं थीं कि रात में उठकर फुलझड़ी जलती देखनी है। तो वैज्ञानिक दृष्टिकोण व सोच के हिसाब से हम आगे तो बढ़े ही हैं।

इस बार मीडिया – अखबार, टी.वी. व रेडियो – ने भी इस घटना को अच्छा कवरेज दिया। यह अलग बात है कि भारत में उल्का पिंडों की यह बौछार उतनी व्यापक न थी जितनी कि आशा थी। सुना है कि जापान व ऑस्ट्रेलिया के लोग इस मामले में ज़्यादा भाग्यशाली रहे।

डॉ. मुनीश रायज़ादा
हांसी, हरियाणा

सदर्भ के नवीन अंक में दी गई कहानी 'अनारको यमत लोक में' को अभी ही मैंने पढ़कर खत्म किया है। वो एक दूसरी एलिस है लेकिन अपने इरादे में बहुत पक्की। थोड़ी मज़ाकिया लेकिन काफी डरावनी कहानी थी, शायद बच्चों के लिए उतनी नहीं जितनी कि बड़ों और शिक्षकों के लिए। इस कहानी में विशेषकर मुझे वह सवाल बहुत अच्छे लगे जो वह यमत से पूछती है। बच्चों को चुप रखने और कराने के लिए बच्चों को टी.वी. और कम्प्यूटर में उलझाकर रखने का तरीका काफी लुभावना है। आजकल जब बच्चे स्कूल से वापस आकर बाहर जाते हैं तो मां-बाप को तो इस बात की चिंता ही नहीं करनी पड़ती कि खेल-कूद कर वे कब वापस आएंगे। टी.वी. और कम्प्यूटर उन्हें सुरक्षित घर पर रखते हैं – सुरक्षित और मूर्ख. . .।

वसंता सूर्या
तिरुवनमियूर, चेन्नई

नवीन अंक प्राप्त हुआ। बहुत अच्छा लगा। लेकिन एक बात ज़रा भी अच्छी नहीं लगी कि 'चंद्रमा-1' लेख में पूछी गई गलतियों के उत्तर देने की अंतिम तिथि 1 जनवरी रखी गई है। मुझे 31 दिसंबर को अंक मिला। ऐसे में कोई 1 जनवरी तक आप को जवाब कैसे पहुंच सकता है।

अगर आपके इस प्रकाशन में एक स्तंभ इस तरह का हो जिसमें वैज्ञानिक उपकरणों जैसे कि

टेलिस्कोप, माइक्रोस्कोप आदि के मॉडल बनाना सिखाए जाएं तो कई अन्य लोगों को भी काफी फायदा हो सकता है।

गौरव पोरवाल
रावत भाटा, राजस्थान

नए अंक की सजावट को देखकर मन नाच ही उठा। वाकई अंक बहुत ही सुंदर तरीके से संवारा गया है। सदस्यता शुल्क में बढ़ोत्तरी तो हम खुशी-खुशी स्वीकार करते हैं लेकिन हमारी यह अपेक्षा भी बनी रहेगी कि संदर्भ में और अधिक सामग्री दिया करें। साथ ही इसके प्रकाशन में भी नियमितता लाने की ज़रूरत है।

इस अंक में प्रस्तुत लेखों में आर्यभटीय ज़्यादा अच्छा लगा। यह लेख 'पुस्तक परिचय' स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित किया गया है। यह कब प्रकाशित हुई? इसका प्रकाशक कौन है? मूल्य कितना है? कहां से मिल सकती है? आदि पूरी जानकारी भी लेख के साथ दिया करें ताकि पाठक को पूरी जानकारी मिल सके।

'ज़रा सिर तो खुजलाइए' तो हर बार बेहतरीन ही होता है। क्या आप 'खुद बनाओ' जैसा कोई स्तंभ नहीं शुरू कर सकते जिसमें घर पर ही विज्ञान के नियमों पर आधारित किसी चीज़ को बनाने की जानकारी हो।

सागर पाठक, फालियाबीड़
भावनगर, गुजरात

संदर्भ के आवरण पृष्ठ को देख रहा था तो एक सुझाव देने की इच्छा व्यक्त हुई। क्या किताबों के नाम, प्रकाशक, लेखक आदि को क्रमवार एक के नीचे एक नहीं प्रकाशित किया जा सकता? इससे पढ़ने में सुविधा होगी। अब 22-23 वें अंक पर कुछ टिप्पणी।

जैसे ही मुखपृष्ठ पलटा तो मूल्यवृद्धि की सूचना मिली। शायद बढ़ती हुई मंहगाई से संदर्भ भी प्रभावित हो गई।

नीरज जैन का लेख 'सिकाडा का मधुर संगीत' पढ़ा। वैसे सिकाडा जैसे जीवों से हमारा पाला तो कभी पड़ा ही नहीं है लेकिन जानकारी के लिहाज़ से लेख महत्वपूर्ण व रोचक था। इस अंक में मेघनाथ साहा के जीवन पर लेख मुझे बहुत पसंद आया क्योंकि मैं कुछ समय पहले वैज्ञानिकों की जीवनी पर लेख या कहानी की मांग कर चुका था।

विजय शंकर वर्मा ने 'जादुई तालाब की पहेली' को गणितीय

सिद्धांत में तब्दील करके वास्तव में रोचकता ला दी। मैंने स्वयं इसे इसी तरह हल करने की जुगत भिड़ाई पर असफल रहा।

चपालाल कुशवाहा
हिरनखेड़ा, होशंगाबाद

आपके द्वारा भेजा गया संदर्भ का 24-25वां अंक तो मिला ही साथ ही संदर्भ का मराठी नमूना अंक भी मिला। बहुत ही अच्छा कदम है कि इस ज्ञान को दूसरी भाषाओं की मालाओं में पिरोने का काम भी शुरू हो गया है।

संदर्भ के पूना के पते पर भी खत लिख रहा हूं। वैसे हमारा सुझाव तो यही है कि शैक्षिक संदर्भ के अंक की हूबहू नकल करके वैसे ही मराठी में प्रकाशित करें तो पाठकों को अधिक लाभ मिलेगा। नमूना अंक के तौर पर मराठी संदर्भ कमज़ोर था फिर भी प्रयास सराहनीय है।

राजकुमार गुप्ता
नाशिक रोड जेल, नाशिक

सयुक्ताक मिला। लेकिन शिकायत बरकरार है कि आप इसका प्रकाशन बड़ी देरी से करते हैं।

प्रो. अमर्त्य सेन का लेख 'पात्रता और अभाव' एक महत्वपूर्ण और ज्ञानवर्धक और रोचक लेख था। कायांतरण में प्यूपा के संदर्भ में जानकारी रोचकता से परिपूर्ण थी।

आशीष पेटारे
इंदौर

मैं कक्षा 11 की छात्रा हूं और संदर्भ की नियमित पाठक भी। मेरा विषय जीवविज्ञान है। मैं इसे बहुत मन लगाकर पढ़ती हूं क्योंकि यह मुझे बहुत अच्छा लगता है। और आप लोग तो इससे संबंधित बहुत अच्छी जानकारियां छापते हैं। मैं तो पढ़कर हैरान हो जाती हूं कि आप लोग इतनी जानकारी कैसे प्राप्त करते होंगे।

मुझे सुशील जोशी का 'कायांतरण' और किशोर पंवार का 'सिकाडा किलर्स' लेख बहुत ही अच्छे लगे। मैंने इन्हें पांच बार पढ़ा है। अमर्त्य सेन का चित्र देखकर तो मैं उछल ही गई। मैं आभारी हूं कि आप संदर्भ देर से भेजते हैं फिर भी मन खुश कर देते हैं। संदर्भ की भाषा भी बहुत अच्छी लगती है जैसे कि कोई बातचीत कर रहा हो।

अनिता सिसोदिया
शुजालपुर सिटी

मैं नवीं कक्षा का छात्र हूं। मुझे संदर्भ बहुत अच्छी और ज्ञानवर्धक लगती है। इसके स्तंभ 'सवालीराम' और 'ज़रा सिर तो खुजलाइए' काफी

पसंद हैं। मैं चाहता हूं कि इसमें पाठकों द्वारा पूछे गए प्रश्नों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।

अविजित शर्मा
वड़ोदरा, गुजरात

संदर्भ का अंक 22-23 मिला और उसे थोड़ा बहुत पढ़ा भी। दरअसल जिस मुद्दे पर मैं लिखना चाह रहा था वह मुद्दा है भाषा। मैं कहना यह चाहता हूं कि हम अंग्रेज़ी पढ़े लोग अपनी मातृ भाषाओं में नहीं लिखते या जो थोड़े बहुत लोग लिखते हैं वो भी अंग्रेज़ी की वैज्ञानिक शब्दावली का इस्तेमाल करते समय सजग नहीं रहते। 'सजग नहीं रहते' यह बात थोड़ी चुभती है लेकिन यदि गंभीरता से विचार किया जाए तो सजग रहना ज़रूरी है इस बात से आप सहमत हो सकेंगे।

मिसाल के तौर पर 'समुद्र सतह में उतार-चढ़ाव' लेख को ही लेते हैं। इस लेख में नियोग्लोबोक्वाड्रिना पेचिडर्मा और फोरामिनिफेरा इन दो शब्दों का (देवनागरी में लिखकर) इस्तेमाल किया गया है। इनमें से 'फोरामिनिफेरा' के लिए आचार्य रघुवीर के शब्दकोश में 'पादछिद्रिगण' यह शब्द दिया गया है। यदि इसी तरह सोचा जाए तो 'नियोग्लोबोक्वाड्रिना पेचिडर्मा' के लिए भी हम नए शब्द को गढ़कर उसका उपयोग कर सकते हैं। हो सकता है इस किस्म के देशी शब्दों को गढ़ने में संस्कृत शब्दों का उपयोग हम मे से कई लोगों को परेशानी भरा लगे। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि अंग्रेज़ी/लैटिन/ग्रीक शब्दों के मुकाबले संस्कृत से बने शब्द कम कठिन होंगे।

वि. द. आप्टे
1187/1, सुमुख सहकारी
देशमुख पथ, पुणे, महाराष्ट्र

नए अंक के सभी लेख बहुत अच्छे लगे – विशेषकर कहानी 'अनारको यमत लोक में' और 'कैसे सीखते हैं बच्चे' लेख बहुत अच्छे लगे। संदर्भ से मुझे बहुत जानकारियां प्राप्त होती हैं।

रूबी चंद्रवंशी
सरस्वती विद्या मंदिर, हरदा

सयुक्त अंक 22-23 पढ़ा। इस अंक में हिरोशिमा से पोखरण, मूल सम्पन्न समाज, मॉनसून एक अबूझ पहेली, समुद्र सतह में उतार-चढ़ाव पढ़कर लगा कि यह भूगोल विशेषांक है। पहली बार इसमें विज्ञान के अलावा अन्य विषय पढ़ने को मिले।

राजेश साहू 'शिक्षक'
पचमढ़ी रोड़, पिपरिया
ज़िला होशंगाबाद म. प्र.

संदर्भ सजिल्द
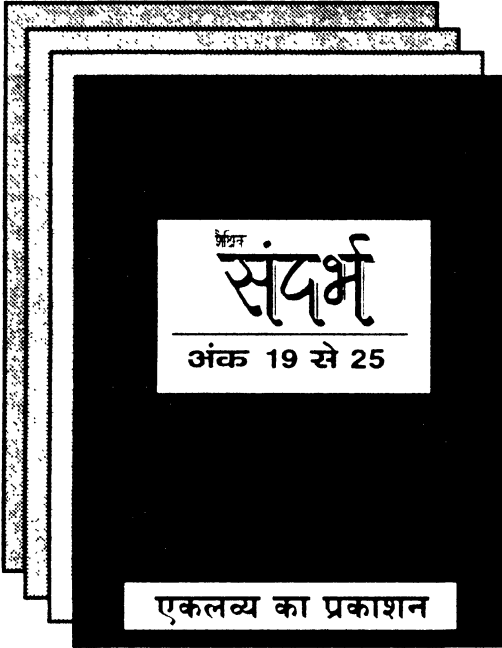
संदर्भ सजिल्द: अंक '1 से 6', अंक '7 से 12' तथा अंक '13 से 18' व अंक '19 से 25' के सजिल्द संस्करण उपलब्ध।

इन अंकों में प्रकाशित लेखों का विषयवार इंडेक्स संस्करण के साथ है।

प्रत्येक का मूल्य: 65 रुपए (रजिस्टर्ड डाकखर्च सहित)

राशि डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें। ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें।

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद-461 001

एकलव्य
ई-1/25, अरेरा कॉलोनी
भोपाल - 462 016

"सीटी मारो"
कुछ मैं भी सीखूं, कुछ वो भी

मैं चाहती हूं कि बच्चे मेरे काम को भी जांचना सीखें।
वे यह जान लें कि मैं भी गलत हो सकती हूं।

आशा कचरु

चित्र: विप्लव शशि

ये बच्चे मेरे गांव रंजोल के हैं, जो आंध्रप्रदेश के मेडक ज़िले में है। वैसे तो मैं उत्तर भारत की हूं। लेकिन पिछले तीन साल से रह रही हूं। पहले मुझे सिर्फ देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली भाषाएं आती थीं, एक जर्मन भाषा को छोड़कर। जर्मन की लिपि रोमन है इसलिए उसे सीखने में दिक्कत नहीं हुई, क्योंकि अंग्रेज़ी के माध्यम से मैं इस लिपि से परिचित थी।

तेलुगु के अक्षर पहचानने में मुझे काफी समय लगा। तीन महीनों तक रोज़ एक घंटा अभ्यास किया। इसमें मुझे किताबों से भी मदद मिली। तेलुगु भाषा में बातचीत तो वैसे भी काफी सीमित थी, क्योंकि मेरे आसपास उर्दू भाषी थे। इसलिए मुझे तेलुगु सीखने और उसके अभ्यास करने के कम ही अवसर मिलते थे। इन बच्चों के कारण मुझे अपना संवाद सुधारने में काफी

मदद मिली है।

पिछले ढाई सालों से मैं इन बच्चों को 'जीवन शिक्षा' पढ़ा रही हूं। साक्षरता, गणित, सामान्य ज्ञान के अतिरिक्त मैं गाना, नृत्य और योग भी कराती हूं। इन्हीं रोचक गतिविधियों के कारण वे कक्षा में आने के लिए प्रेरित होते हैं। मैं उनसे हमेशा कहती हूं – "मैं तुमसे तेलुगु सीखती हूं और तुम मुझसे अंग्रेज़ी और हिन्दी।" इस बात से उनका उत्साह बढ़ता है।

मेरा काम करने का तरीका कुछ इस प्रकार है – मैं चित्र बनाती हूं और उनके साथ दोनों भाषाओं, परिचित (तेलुगु) और अपरिचित भाषा (अंग्रेज़ी या हिन्दी), में उसका नाम लिख देती हूं।

घर या हाऊस या इल्लू

मैं उसके हिज्जे करके एक-एक अक्षर पढ़ती जाती हूं और वे उसे अपनी स्लेट या नोट बुक में लिखते रहते हैं। ये कॉपियां मैं उन्हें एक झोले में से देती हूं जिसमें कुछ अन्य पुस्तकें और खेल भी होते हैं। हम साथ में एक श्यामपट लेकर भी घूमते हैं, जब भी कुछ सीखना हो, बस शुरू हो जाते हैं। फिर सब मिलकर तेलुगु के शब्दों को अंग्रेज़ी में लिखते हैं। जैसे इल्लू, हाऊस के लिए। इससे तेलुगु अक्षरों की पहचान भी हो जाती है और मेरा भाषा का अभ्यास भी। कुछ बच्चों को तेलुगु भी ठीक से लिखनी नहीं आती, यह गतिविधि उनके लिए भी लाभदायक होती है।

बच्चे मुझसे पूछते हैं कि क्या हम चित्र बना सकते हैं तो मैं कहती हूं कि इच्छा हो तो बना सकते हो। सभी बहुत शौक से चित्र बनाते हैं और फिर खुशी-खुशी लिखते भी हैं। मैं ऐसे और भी चित्र बनाती हूं जो कि उनके जीवन या परिवेश से संबंधित होते हैं।

इस प्रकार वे अंग्रेज़ी के अक्षरों से भी परिचित हो जाते हैं और उन्हें लिख भी पाते हैं। साथ-ही-साथ उनकी तेलुगु का भी अभ्यास हो जाता है।

कुछ नई चर्चा के लिए

कभी-कभी सहज ही नई परिस्थितियां उभर के आती हैं तो मैं उनसे संबंधित मसलों पर चर्चा कर लेती हूं। जैसे एक बार मैंने श्यामपट पर सांप का चित्र बनाया तो कुछ बच्चे डरकर भागने लगे। वो इसलिए क्योंकि जिस पेड़ के नीचे हम उस

दिन बैठे थे कुछ दिनों पहले उस पर से एक सांप नीचे गिरा था। मैंने बच्चों को यह सांत्वना दी कि सांप मनुष्य से डरते हैं और जब तक हम उन्हें परेशान न करें वे भी कुछ नहीं करते। यह सारी बातें मैंने उनसे टूटी-फूटी तेलुगु में कहीं। बच्चों ने मेरी इस कोशिश में गलतियां बताई और सही वाक्य दोहराए। इस तरह मेरा शब्द भंडार और बढ़ा। फिर एक-एक करके उन्होंने सांपों के साथ हुए अपने अनुभव बताए। किस तरह सांप उनकी झोंपड़ी में आ गया और उनके पिता ने मार डाला आदि। इससे वे अपना डर भूल गए और फिर लिखने में जुट गए।

इस्तेमाल की सामग्री

मैं अंग्रेज़ी और तेलुगु के चित्र कार्ड भी निकालती हूं। बच्चों से कहती हूं कि वे इनमें अपने पहचाने हुए अक्षर ढूंढें। मैं खुद पढ़कर भी उन्हें अक्षरों की पहचान कराती हूं।

इस प्रकार हर बार नए शब्द और नए अक्षरों से उनका परिचय होता है। कभी-कभी बीच में उन्हें स्लेट पर या रंगीन पेंसिल से कागज़ पर चित्र बनाने के लिए कह देती हूं। वे फूल-पत्ती, पतंग, झण्डा, घर, वाहन जैसे बढ़िया चित्र बनाते हैं। उन चित्रों के बारे में पूछने पर उन्हें नए शब्दों से परिचित करा पाती हूं। साथ ही तेलुगु के शब्द भी पूछती हूं ताकि मेरा शब्द भंडार भी बढ़ता रहे। कभी-कभी तो मैं अचानक ही बच्चों से मिलने चली जाती हूं। वे नमस्कारम् कहते
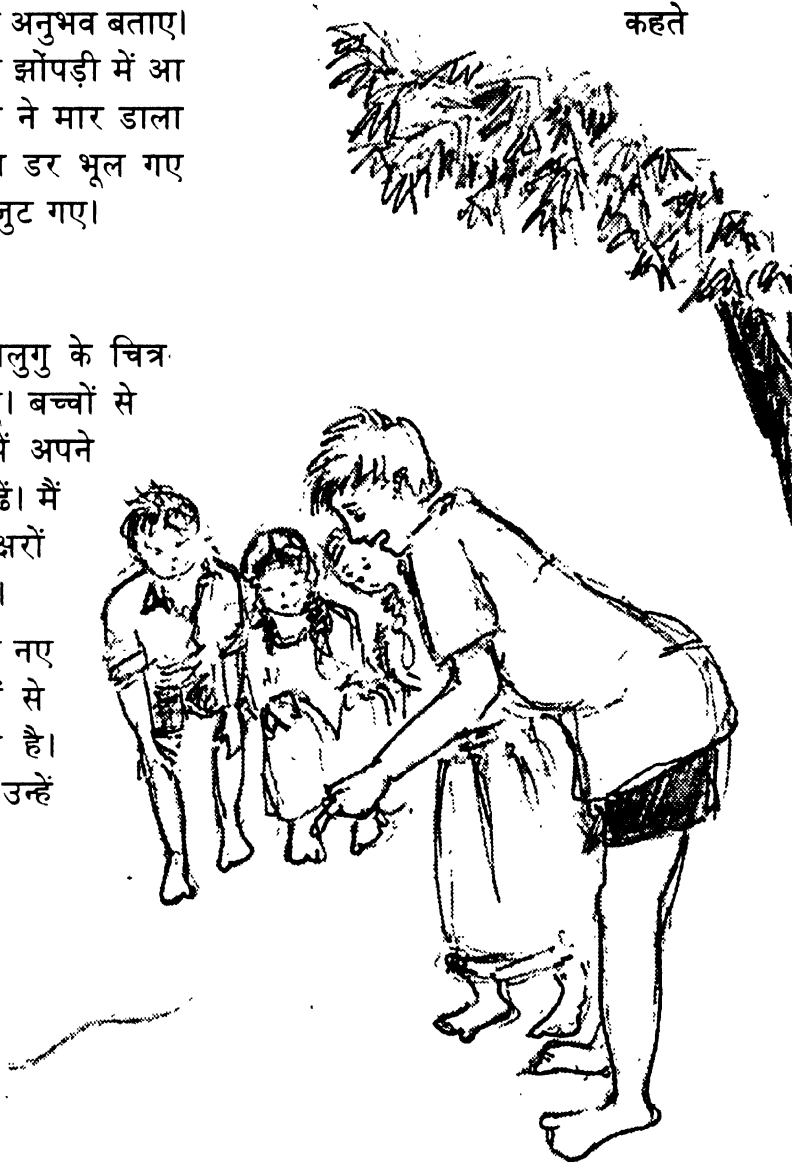
हुए दौड़कर मिलने आते हैं। उन्हें इस तरह मुस्कुराता देखकर मेरा उत्साह बढ़ता है। ऐसी परिस्थितियों में रहने के बावजूद भी इतने भावात्मक चेहरे देखकर एक उम्मीद-सी बंधने लगती है।

मैं उनसे तेलुगु में पूछती हूं, "बागुनारा?" (कैसे हो?)

कुछ तेलुगु में जवाब देते हैं और बाकी अंग्रेज़ी में गुड मॉर्निंग या ईवनिंग से स्वागत करते हैं। चूंकि उन्हें मालूम नहीं कि दिन के किस पहर में क्या बोलना चाहिए इसलिए वे शाम को भी गुड मॉर्निंग कह देते हैं। इसलिए उन्हें दिन के पहरों से परिचित कराती हूं। फिर अंग्रेज़ी के दिन के नाम, तेलुगु लिपि में लिख देती हूं।

कक्षा पांच की एक लड़की थोड़ा शर्माते हुए मेरे लिखे को सुधारती है, "ऐसे नहीं मैडम इसे ऐसे लिखना है।" और श्यामपट पर आकर उसे मिटाकर ठीक कर देती है। फिर उससे पूछती हूं कि क्या अब ठीक लिखा है? वह 'हां' कर देती है और हम दोनों विद्यार्थी बन जाते हैं।

कभी तेलुगु में लिखते समय मुझे उसकी शुद्धता पर शंका होती है लेकिन उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। महत्वपूर्ण यह है कि बच्चे मेरे काम को जांचना सीखें और जान लें कि मैं भी गलत हो सकती हूं। मुझे भी सब कुछ मालूम हो यह ज़रूरी नहीं है। वे अपने कहे की ज़िम्मेदारी लेना सीखते हैं और दूसरों को गलती सुधारने का मौका दिया जाना चाहिए यह भी सीखते हैं।

जब भी मेरे पास खाली समय रहता है मैं उनके साथ बैठती हूं। यहां कक्षा से अलग स्थिति होती है। मेरी जीप देखकर वे दौड़ आते हैं और मुझे घेरकर खड़े हो जाते हैं।

मैं उन्हें बार-बार अवसर देती हूं कि वे मुझे तेलुगु पढ़ाएं और मुझसे सवाल करें। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे शिक्षात्मक ढंग से सवाल कर रहे हैं; बहुत ही सीधे और सरल सवाल जिनका जवाब मैं आराम से दे पाती हूं। ये हैं हमारे भविष्य के शिक्षक मैंने सोचा।

सवाल कुछ इस तरह के थे – तुम्हारे माता-पिता, भाई कहां हैं? दिल्ली कहां? तुम्हारे कितने भाई-बहन हैं? आदि। इसी संबंध में मैं उन्हें भूगोल के बारे में बताती हूं, जैसे आंध्र प्रदेश में रंजोल कहां है आदि।

एक-दो बच्चे शरारत करते हैं बाकी उनकी शिकायत करते हैं। वे उद्दंड बच्चों की अवहेलना करते हैं। मैं उन्हें समझाती हुई कहती हूं कि पहले हम सभी को स्वयं अपने को देखना चाहिए। इन बातों में समय बरबाद नहीं करना चाहिए कि कौन क्या कर रहा है। मेरी बात को वे ध्यान लगाकर सुनते

हैं और फिर से ठीक से ध्यान लगाकर काम करते हैं। लेकिन कुछ देर बाद फिर उनका ध्यान किसी बात से बंट जाता है। इस समस्या से जूझने के लिए मैं उन्हें आंखें बंद करके एक जगह ध्यान केन्द्रित करने को कहती हूं। इस दौरान मैं भी आंखें मूंदकर बैठती हूं। मुझे यह देखकर हैरानी होती है कि सबसे छोटे बच्चे भी कुछ सेकेंड आंखें आधी बंद किए, चुपचाप बैठे रहते हैं – या फिर कभी उन्हें ''मैं अंग्रेज़ी सीखना चाहती हूं, मैं और और सीखना चाहती हूं।'' दोहराने को कहती हूं।

कभी-कभी मैं सरल किताबों में से कहानियां पढ़ती हूं। वे कुछ देर तो पुस्तक के चित्रों को एकटक देखते रहते हैं और फिर अपने तरीके से उस पर कहानियां बनाते हैं। फिर मैं उस कहानी को अंग्रेज़ी में पढ़ती हूं। पूरी तरह से समझ तो नहीं पाते लेकिन यह उम्मीद है कि वे कुछ परिचित शब्दों का संबंध कहानी की कुछ घटनाओं से बैठा पाएं।

उसके बाद वही कहानी उन्हें तेलुगु में सुनाती हूं। वे मेरी भाषा में गलतियां निकालते हैं और हम लोग मिलकर, सही क्या है, इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। यहां यह भी ज़रूरी नहीं कि उन्हें पूरी कहानी समझ में आए। कहानी के कुछ खास हिस्से चुनकर, उसमें आए नए शब्दों का अर्थ बताकर उन्हें लिखने को कहती हूं। उदाहरण के लिए – यदि किसी चित्र में कोई जानवर कुछ करता दिखाया गया हो तो उसी से

संबंधित शब्दों का प्रयोग करती हूं। जिससे वे शब्द सीख पाएं।

कभी उन्हें अपनी कहानियां बनाने के लिए प्रोत्साहित करती हूं। इससे कम बोलने वाले बच्चों को भी बोलने का अवसर मिलता है।

अंग्रेज़ी की कविताएं (राईम्ज़) सुनाते समय भी इसी तरीके का प्रयोग करती हूं। सिर्फ चित्रों को देखकर और तुकबंदी को सुनकर ही वे पुनः उसे सुनने को और दोहराने को तत्पर हो जाते हैं। इस तरह नए शब्द तो सीखते ही हैं।

ये बच्चे अंग्रेज़ी या प्राईवेट स्कूलों में जाना चाहते हैं, क्योंकि अमीर लोगों के बच्चे वहां पढ़ते हैं, अंग्रेज़ी बोलते हैं और इन बच्चों का मज़ाक उड़ाते हैं। चूंकि ये लोग तेलुगु बोलते हैं, मैं उन्हें यह बात स्पष्ट कर देती हूं कि अंग्रेज़ी हम पर हुकूमत करने वाले अंग्रेज़ों की भाषा है। हमारी मातृ-भाषा तो तेलुगु है। यह भी कहती हूं कि मैं उन्हें अंग्रेज़ी भी सिखा दूंगी, उन्हें खुद को पिछड़ा हुआ, नीचा समझने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन ज़रूरी है कि वे पहले अच्छे ढंग से तेलुगु पढ़-लिख और समझ पाएं। यह बात वे आराम से समझ पाते हैं – शायद इसलिए कि मैं भी तेलुगु सीख रही हूं।

जब जाने लगती हूं तो आवाज़ सुनाई देती है – "सीटी मारो", जो दरअसल "सी यू टुमारो" का उनका रूपांतरण है।

आशा कचरु: प्राकृतिक खेती में रुचि; समय-समय पर बच्चों को पढ़ाने की कोशिश।

मूल लेख अंग्रेज़ी में; **अनुवाद: शिवानी बजाज**; एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम से संबद्ध।

विप्लव शशि बड़ौदा की एम. एस. यूनिवर्सिटी में कला का अध्ययन कर रहे हैं।
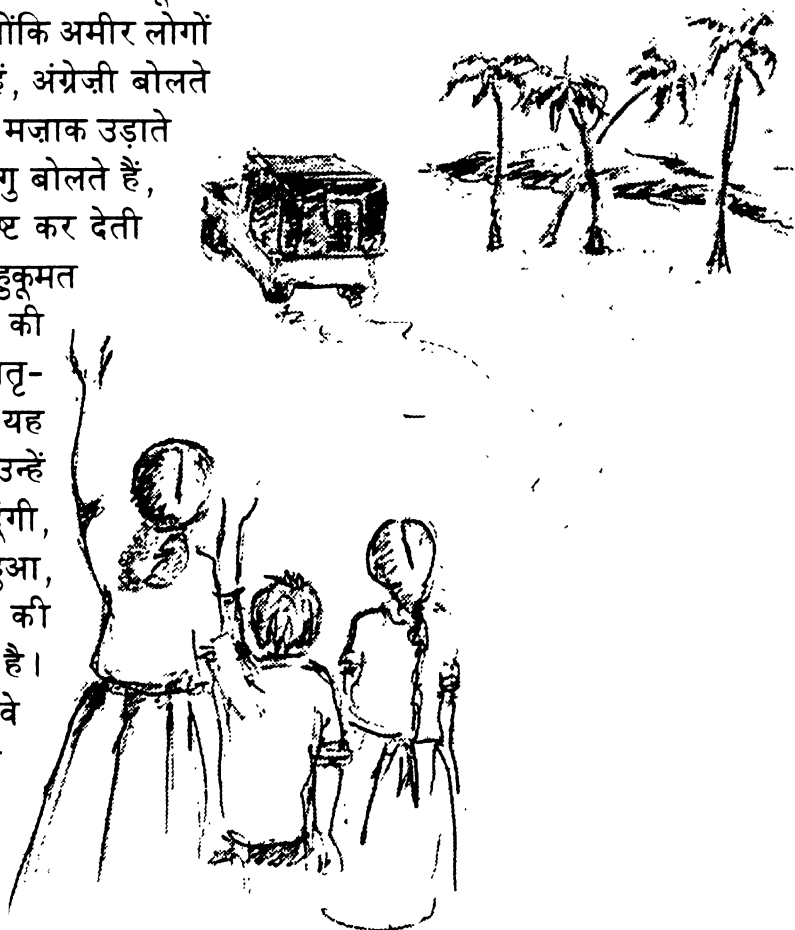
जब हवा न बहे
हवा के दबाव का उलझता
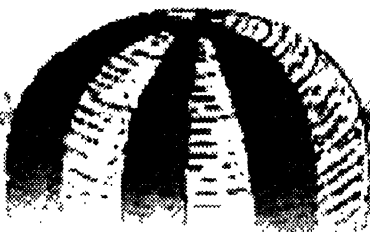
आजकल तो अक्सर टीवी पर मौसम बालिकाएं ऐसी बातें कहती रहती हैं –"बंगाल की खाड़ी के ऊपर जो कम दबाव का क्षेत्र बना हुआ है . . . . .।"

वैसे कहीं-कहीं तो अपनी बातचीत में भी हवा का दबाव आ ही जाता है, जैसे:

- "भई ज़रा ज़ोर लगा के गुब्बारा फुलाना।"
– "कमर टूट गई, टायर में हवा कम थी।"

और कई बार तो आड़े-तिरछे हवा के दबाव की बात आ जाती है।

- "आज बहुत घाम है, हवा नहीं चल रही।" "हां, लगता है हवा का दबाव कम है।"
- "आजकल तो प्रेशर कुकर आ गए हैं।"

हाल ही में शिक्षकों के एक समूह के बीच हवा के दबाव की चर्चा हुई। चर्चा में मदद मिले इसलिए पहले लोगों के बीच कुछ सवाल बांटे गए,

लोगों ने इनके जवाब दिए। लेकिन जवाबों को पढ़कर लगा कि मामला तो और भी उलझ गया है।

अब ज़रा आप भी इन सवालों पर अपनी नज़र दौड़ाइए और तरह-तरह के जवाब भी देखिए।

पहला सवाल: *चित्र में दो एक समान बोतल दर्शाई गई हैं। एक में कॉर्क लगा है व दूसरी खुली है। तो हवा का दबाव*
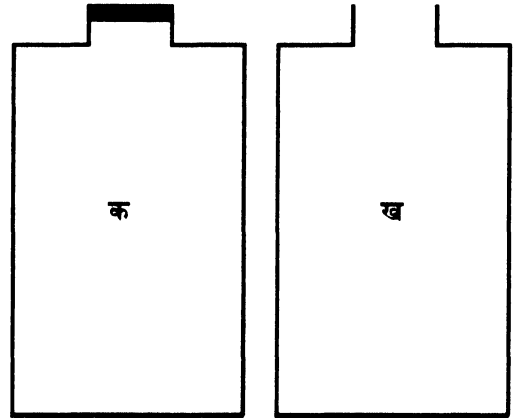
(अ). दोनों में बराबर है

(ब). बोतल 'क' में ज़्यादा है

(स). बोतल 'ख' में ज़्यादा है

जवाब:

1. दोनों में हवा का दबाव बराबर है।
2. दोनों का आयतन बराबर है इसलिए हवा का दबाव भी बराबर रहेगा।
3. 'ख' बोतल खुली है इसलिए इसमें दबाव अधिक होगा।
4. 'क' बोतल में कॉर्क लगा है इसलिए उसका दबाव अधिक है।
5. दोनों में बराबर है क्योंकि वायुमंडलीय दाब सब तरफ बराबर होता है।

दूसरा सवाल. *नीचे चित्र में दो बीकर दिखाए गए हैं। एक सीधा रखा हुआ है व दूसरा उल्टा रखा है। तो हवा का दबाव*

(अ). बीकर 'क' में ज़्यादा है

(ब). बीकर 'ख' में ज़्यादा है

(स). दोनों में बराबर है

क्यों?
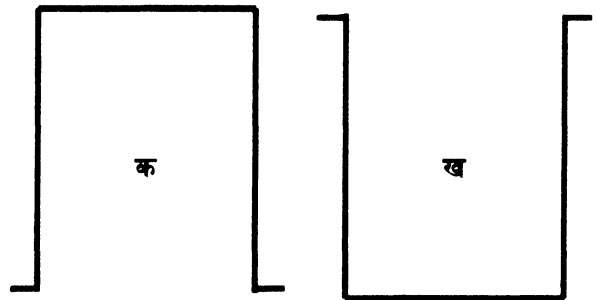
जवाब:

अ. दोनों में बराबर है।

ब. बीकर 'क' में अधिक है क्योंकि वह उल्टा रखा हुआ है।

स. 'ख' में ज़्यादा है।

द. बीकर को सीधा या उल्टा रखने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि वायुमंडलीय दाब चारों तरफ समान होता है।

ई. 'क' बीकर उल्टा रखा हुआ है, उसकी हवा को निकलने की जगह नहीं है। इसलिए उसका दबाव अधिक होगा।
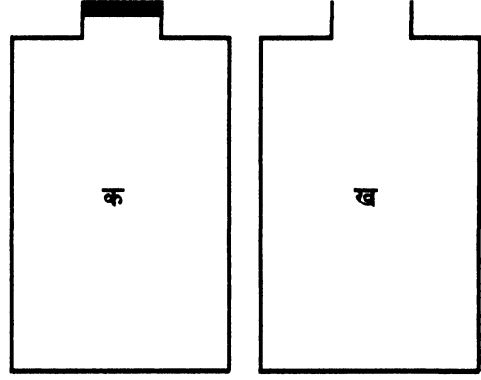
तीसरा सवाल: *एक ढक्कन बंद इंजेक्शन की शीशी तथा एक ढक्कन बंद ग्लूकोज़ की बोतल में – हवा का दबाव*

(अ). दोनों में बराबर है

(ब). ग्लूकोज़ की बोतल में ज़्यादा है

(स). इंजेक्शन की शीशी में ज़्यादा है

क्यों?

जवाब:

अ. हवा का दबाव दोनों में बराबर है।

ब. आयतन के अनुसार ग्लूकोज़ की बोतल में हवा का दबाव अधिक रहेगा।

स. दोनों में बराबर है क्योंकि दोनों ढक्कन बंद हैं।

द. ग्लूकोज़ की बोतल में ज़्यादा होगा क्योंकि उसमें पदार्थ अधिक है।

ई. इंजेक्शन की शीशी में दबाव अधिक होगा।

चौथा सवाल: *चित्र में दर्शाई कांच की नली में बंधे हुए फुग्गे को फुलाकर उस नली को बंद कर दें। दूसरी नली खुली है तो हवा का दबाव*

(अ). शीशी और फुग्गे में अंदर बराबर होगा

(ब). फुग्गे में ज़्यादा होगा

(स). शीशी में ज़्यादा होगा

जवाब:

अ. फुग्गे में ज़्यादा होगा।

ब. शीशी में अधिक होगा क्योंकि शीशी एक खुली नली से जुड़ी हुई है।

स. फुग्गे में हवा का दबाव ज़्यादा होगा क्योंकि फुग्गा मुंह से हवा भरकर फुलाया गया है।

पांचवां सवाल: *एक 250 मि. ली. के फ्लास्क तथा एक 250 मि. ली. के बीकर में हवा का दबाव*

(अ). 250 मि.ली. के फ्लास्क में ज़्यादा है

(ब). 250 मि.ली. के बीकर में ज़्यादा है

(स). दोनों में बराबर है

क्यों?
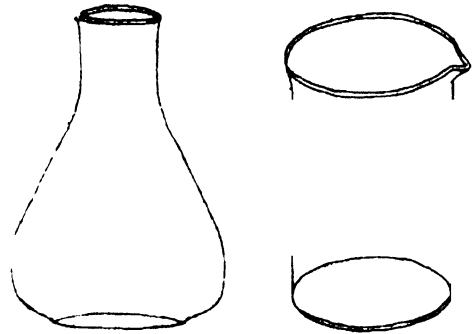
जवाब:

अ. दोनों में बराबर है।

ब. दोनों में बराबर है क्योंकि दोनों का आयतन बराबर है।

स. दोनों में बराबर है क्योंकि हवा की मात्रा दोनों में समान है।

द. बीकर में अधिक है।

ई. दोनों में बराबर है क्योंकि बर्तन के आकार से दाब में कोई अंतर नहीं पड़ता।

वैसे क्या लगता है इन जवाबों को देखकर। हो सकता है कि इनमें से कुछ जवाब सही हों; या ये भी हो सकता है कि सारे जवाब ही गलत हों और आपको जो जवाब सूझे वही सही हो।

अपने जवाब लिख भेजिए हम तक।

संदर्भ, द्वारा एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद, 461 001.

अगले अंक में हम हवा के दबाव के बारे में विस्तृत चर्चा करेंगे जिसमें आपके जवाब भी शामिल किए जाएंगे।

भारत में बुनियादी शिक्षा पर एक रिपोर्ट
प्रोब रिपोर्ट

अंग्रेज़ी भाषा में प्रकाशित यह रिपोर्ट भारत में स्कूली शिक्षा के हालातों से जुड़े सभी पहलुओं की पड़ताल करती है। फिर भी इस रिपोर्ट ने मुख्य रूप से उन कारणों का पता लगाने की कोशिश की है जिनकी वजह से बच्चे शिक्षा के मौलिक अधिकार से वंचित रह जाते हैं। साथ ही इस समस्या से जुड़े आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक कारणों की जांच करके तर्क सहित यह बताने की कोशिश की है कि इन हालातों को बदला जा सकता है।

इस रिपोर्ट को तैयार करने के लिए बड़े स्तर पर सर्वे किया गया। सर्वे का काम सेंटर फॉर डिवेलपमेंट इकोनॉमिक्स (दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स) के साथ मिलकर किया गया। वर्ष 1996 के अंत में उत्तरी भारत के दो सौ स्कूलों में यह सर्वे किया गया। इसके अलावा बच्चों से, पालकों से और शिक्षकों से बातचीत भी की गई। इन तमाम कोशिशों के बाद इस सार्वजनिक रिपोर्ट के माध्यम से स्कूली व्यवस्था की एक प्रामाणिक तस्वीर पेश करने का प्रयास सर्वेकर्ताओं ने किया है।

इस रिपोर्ट में कई बातों को उभारने की कोशिश की गई है, जैसे: शिक्षा का मौलिक अधिकार, स्कूली शिक्षा के बारे में सामान्य मिथक, पालकों और बच्चों के अनुभव, शाला का माहौल, कक्षा की विविध प्रक्रियाएं, शिक्षा की प्रबंध संबंधी दुविधाएं, प्राथमिक शिक्षा की राजनीति आदि।

यह रिपोर्ट उन सभी लोगों के लिए उपयोगी है जो किसी-न-किसी रूप से शालाओं या शिक्षा से जुड़े हैं। इस रपट का हिन्दी संस्करण भी शीघ्र प्रकाशित किया जा रहा है।

कीमत: एक सौ पचास रुपए।
प्रकाशक: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
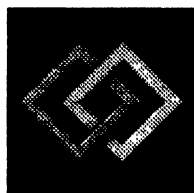
क्यूं है रात अंधेरी

सुबीर सरकार

एक थाल मोतियों से भरा,
सबके सर पर औंधा धरा!

अमीर खुसरो की यह पहेली आप और हम कई बार हल कर चुके हैं। पर क्या आपने कभी सोचा है कि मोतियों के इस थाल के बावजूद रात को अंधेरा क्यों होता है? पहली नज़र में तो आपको लगेगा कि क्या बेवकूफ़ी भरा सवाल है। कोई बच्चा भी बता देगा कि रात में सूर्य नहीं निकलता है। या जो इस तथ्य से परिचित हैं कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है, वे कहेंगे – इस गति के दौरान पृथ्वी का जो हिस्सा सूर्य के सामने पड़ता है वह प्रकाशमान होता है और बाकी अंधकार में डूबा रहता है। हां, आकाश में कुछ तारों की मद्धिम रोशनी अवश्य फैली रहती है।

पर इन तारों की रोशनी इतनी मद्धिम क्यों होती है? इसका उत्तर भी बड़ा सहज है – कि वे हमसे बहुत दूर हैं। हमारे पास यह जानकारी भी है कि ये तारे हमारे सूर्य के समान ही विशाल और

चमकीले हैं, बल्कि कई तो सूर्य से भी बड़े। अगर ये तारे हमसे उतने ही पास होते जितना कि सूर्य है, तो हमारी आंखें उनकी रोशनी में वैसे ही चौंधियातीं जैसी की सूर्य के आगे। सूर्य पृथ्वी से लगभग पंद्रह करोड़ किलोमीटर दूर है। जबकि हमारा सब से नज़दीकी तारा अल्फा सेन्टॉरी (Alpha Centauri) सूर्य की दूरी से ढाई लाख गुना अधिक दूर है। अन्य तारों की तो बात ही छोड़िए।

पर वास्तव में क्या यह उत्तर संतोषजनक है? यह सच है कि तारे एक-दूसरे से बहुत दूर-दूर हैं, मगर उनकी संख्या भी बहुत अधिक है। सैद्धांतिक रूप से यह मान लिया गया है कि तारे एक-दूसरे से अत्यधिक दूर होते हुए भी ब्रह्मांड में चारों ओर फैले हुए हैं और ब्रह्मांड असीम है। ऐसी स्थिति में हम जिस दिशा में देखेंगे, हमें अंततः एक तारा तो दिखेगा ही दिखेगा। चाहे वह कितनी ही दूर क्यों न हो। इस हिसाब से तो रात को किसी भी दिशा में आकाश भी उतना ही चमकीला दिखना चाहिए, जितना

कि एक तारा। या हम यूं कहें कि आकाश तारों से पटा हुआ होना चाहिए। पर हमें जो आकाश दिखता है वह तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी विशाल काली चादर में छोटे-छोटे प्रकाश बिंदु टंके हों। क्यों नहीं आकाश तारों से जगमगाता?

दरअसल किसी भी दिशा में उस दिशा का हमारे सबसे नज़दीक का तारा, उन तारों की रोशनी हम तक पहुंचने से रोक देता है जो ठीक उसके पीछे की ओर होते हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो हम जिस दिशा में देखते हमें खूब सारे तारे दिखते। यदि ब्रह्मांड असीम है तो रोशनी भी असीम होती!

सदियों से यह सवाल एक रहस्यमय पहेली की तरह जिज्ञासुओं को परेशान करता रहा है। व्यापक रूप से यह पहेली सन् 1720 में चर्चा का विषय बनी। जान-माने ब्रिटिश खगोलशास्त्री एडमंड हैली ने इसे सामने रखा। 1744 ई. में एक स्विस खगोलशास्त्री फिलिप लॉ डे चेसो पुनः इसे सुर्खियों में लाए। लेकिन इसे लोकप्रिय बनाने का श्रेय एक जर्मन डॉक्टर व शौकिया खगोलशास्त्री *हेनरिक विल्हेला मथाऊस अल्बिर्स* को जाता है। उन्होंने सन् 1823 में अपने एक लेख के ज़रिए इस मुद्दे को उठाया। तब से यह पहेली 'आल्बर्स का विरोधाभास' के नाम से जानी जाती है। ब्रह्मांड विज्ञानी एडवर्ड हॅरिसन द्वारा हाल ही में किए गए शोध से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि लोग इस पहेली के बारे में बहुत पहले से जानते थे। प्रसिद्ध खगोलशास्त्री जोहनस केपलर और कवि एडगर एलन पो ने अपने लेख और साहित्य में इसका उल्लेख किया है। इसलिए हॅरिसन महोदय का सुझाव है कि इतिहास की यथार्थता का ध्यान रखते हुए इस पहेली को 'चमकीले आकाश का विरोधाभास' कहना अधिक उचित होगा।

क्या आपको अभी भी नहीं लगता कि यह एक बुनियादी समस्या है। वैसे इस समस्या को समझने का सबसे बढ़िया तरीका है – गणना, सिर्फ साधारण गणना। अगर आप गणना से भी घबराते हैं तो एक और तरीका है – अनुरूपता का।

पेड़ और तारे

कल्पना कीजिए कि आप एक ऐसे वन में खड़े है जो कि अनंत में फैला हुआ है। अब आप जिस दिशा में देखेंगे उस ओर आपको एक-न-एक पेड़ तो दिखेगा ही। हां, वह पेड़ नज़दीक या दूर हो सकता है। पेड़ों के बीच की दूरी इस बात पर निर्भर करती है कि वन कितना घना है। अगर वन अत्यंत घना है तो पेड़ भी एक-दूसरे के अत्यंत करीब होंगे। यदि वन ज़्यादा घना नहीं है तो आपकी दृष्टि में बाधा पहुंचाने वाले पेड़ भी दूर-दूर स्थित होंगे। अगर हम मानकर चल रहे हैं कि वन-क्षेत्र

अनंत तक फैला हुआ है तो आपसे पेड़ों की दूरी अधिक मायने नहीं रखती। अब आप कल्पना कीजिए कि ऐसे वन के सारे पेड़ों के तने सफेदी से पुते हों तो आप को क्या नज़र आएगा। सिर्फ एक सफेद दीवार जैसी रचना। संभव है अब आप कहें कि अगर हम अपने चारों ओर चमकीले तारों से भरे वन से घिरे हैं तो हमें हर दिशा में एक समान चमकीला प्रकाश दिखना चाहिए। समस्या यही है कि वास्तव में ऐसा क्यों नहीं होता? क्यों रात अंधेरे में डूबी रहती है?

दरअसल इससे भी अधिक व्यापक सवाल पूछा जा सकता है। ऑल्बर्स एवं अन्य वैज्ञानिकों की गणनाओं के अनुसार, रात में आकाश दिन के मुकाबले पचास हज़ार गुना अधिक चमकीला होना चाहिए। और फिर तारे तो हर वक्त आसमान में मौजूद हैं — क्या रात और क्या दिन। अब तो हमारा प्रश्न और भी विस्मयकारी हो सकता है। हम पूछ सकते हैं कि आकाश दिन में भी इतना अंधकारमय क्यों होता है? चकरा गए न! इसका भी उत्तर है कि चमकीले सूर्य के बावजूद दिन में आकाश हर दिशा में उतना चमकीला नहीं होता जितना कि सूर्य की दिशा में। जबकि हर दिशा में प्रकाशवान तारे उपस्थित हैं। चलिए वापस आते हैं वन वाली अनुरूपता पर। मान लीजिए कि उस वन में आप के एकदम करीब ही एक पेड़ है जिसे हम थोड़ी देर के लिए 'सूर्य पेड़' का नाम दे देते हैं। अब यदि आप अपनी जगह पर खड़े रहकर इस तरह घूमने लगते हैं जैसे पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है; तब आप उस 'सूर्य पेड़' को प्रत्येक चक्कर में कुछ समय के लिए ही देख पाएंगे। ठीक! परंतु फिर भी वन में ऐसे पेड़ मौजूद रहेंगे जो आपकी दृष्टिरेखा में बाधा पहुंचाएंगे। कहने का मतलब यह है कि हर समय आपकी दृष्टि में एक न एक पेड़ ज़रूर रहेगा, चाहे आप 'सूर्य पेड़' को देख पा रहे हों या नहीं! इस आधार पर अब हम कहें कि कोई फर्क नहीं पड़ता, चाहे दिन हो या रात! कोई न कोई तारा हमारे आकाश को आलोकित किए रहेगा।

अब तो आप हमसे सहमत होंगे कि समस्या वास्तविक है और गहरी भी। इसे कैसे सुलझाया जाए। हमारी अपेक्षा और हमारे अवलोकन दोनों में स्पष्ट विरोधाभास है! संभव है हमारी बुनियादी मान्यताओं में कुछ गड़बड़ है। पहले मान्यताओं पर ही बात कर ली जाए।

बिखरे हैं तारों के समूह

सबसे पहले तो हमने यह माना कि तारे ब्रह्मांड में चारों ओर समान रूप से बिखरे हुए हैं। जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है। तारे समूहों में बंटे

हुए हैं। इन समूहों को हम मंदाकिनी कहते हैं। हमारी पृथ्वी भी एक मंदाकिनी का हिस्सा है। ब्रह्मांड में अनेक मंदाकिनियां हैं। किन्हीं भी दो मंदाकिनियों के बीच की दूरी किसी एक मंदाकिनी में मौजूद दो तारों के बीच की दूरी से कई गुना अधिक होती है। हमारी यह मान्यता कि तारे ब्रह्मांड में चारों ओर बिखरे हैं सही बनी रहेगी यदि हम 'तारे' के बजाय 'मंदाकिनी' शब्द का उपयोग करें।

दूसरी मान्यता यह है कि सारे तारे समान रूप से चमकीले होते हैं। जबकि हकीकत में उनकी चमक बराबर नहीं होती। इससे आसमान किसी दिशा में थोड़ा अधिक चमकीला होगा या कहीं थोड़ा कम। पर इस तथ्य से इस बात पर कोई फर्क नहीं पड़ता कि आकाश को चमकीला होना चाहिए या कि रात को अंधेरा क्यों होता है?

तीसरी और अंतिम महत्वपूर्ण मान्यता यह रही है कि तारों की संख्या एवं ब्रह्मांड दोनों ही असीम हैं। इसी आधार पर हम विश्वासपूर्वक कहते हैं कि चाहे हम किसी भी दिशा में दृष्टि दौड़ाएं – हमें एक न एक तारा अवश्य नज़र आएगा। अब प्रश्न उठता है कि किसी भी दिशा में हमें कितनी दूरी पर यह एक तारा मिलेगा या दिखेगा। स्पष्ट है कि यह तारों के बीच की औसत दूरी पर निर्भर करेगा। अब हम पुनः अपने वन-क्षेत्र में वापस चलते हैं।

फिर पेड़ों के बीच

यदि पेड़ काफी पास-पास उगे हुए हैं तो हमारी दृष्टि रेखा में हर दिशा में ऐसे पेड़ों के कारण बाधा पहुंचेगी जो हमारे काफी नज़दीक हैं। इसके विपरीत यदि पेड़ एक-दूसरे से काफी दूर-दूर स्थित हैं तो हमें किसी एक दिशा में एक पेड़ देख पाने के लिए दूर तक दृष्टि दौड़ानी पड़ेगी। यहां पेड़ के तने की चौड़ाई भी महत्व रखती है। अगर तने विशाल हैं तो चंद पेड़ ही काफी होंगे हमारे दृष्टि-क्षेत्र को पूरी तरह ढांकने के लिए। लेकिन अगर तने काफी पतले हैं तो ज़्यादा पेड़ों की

ज़रूरत पड़ेगी और ये पेड़ अपेक्षाकृत दूर होंगे। अतः हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि एक विशेष दिशा में एक पेड़ (या तारा) देखने के लिए जिस दूरी तक हमें देखना होगा वह दूरी पेड़ों (या तारों) के बीच की औसत दूरी की समानुपाती एवं पेड़ के तने के व्यास (या तारे के तल क्षेत्र) के विलोमानुपाती होगी।

साधारण गणना के द्वारा यह दूरी निकाली जा सकती है। मान लीजिए इस दूरी को हम S से दर्शाते हैं। पेड़ के तने (या तारे के) अर्धव्यास को हम R कहें और संकेत n द्वारा हम प्रति इकाई क्षेत्र में पेड़ों की संख्या (या प्रति इकाई आयतन में तारों की संख्या) को दर्शाते हैं। तब पेड़ों के लिए – जो एक द्वि-आयामी समतल में हैं – सूत्र है:

$$S = \quad 2\,Rn$$

अब तारों के लिए जो एक त्रि-आयामी अंतरिक्ष में फैले हुए हैं सूत्र होगा:

$$S = \quad \pi R^2 n$$

उदाहरणतः यदि किसी वन में पेड़ों के बीच की औसत दूरी 10 मीटर है और पेड़ों के तने का औसत व्यास एक मीटर है, तो किसी भी दिशा में

हमारी दृष्टि रेखा को बाधा पहुंचाने वाले अधिकांश पेड़ कम से कम 100 मीटर की दूरी पर स्थित होंगे। अगर पेड़ों के तनों की चौड़ाई आधी हो या उनके बीच की दूरी दुगनी हो तो दूरी S भी दुगनी हो जाएगी। यह गणना हम तारों के लिए भी कर सकते हैं, अगर हमें उनका औसत आकार और उनके बीच की दूरी ज्ञात हो। किसी एक तारे का औसत व्यास हम सूर्य के व्यास के बराबर मान सकते हैं। सूर्य का व्यास सात लाख किलोमीटर है। अब सवाल उठता है कि औसत दूरी कितनी मानें? जैसा कि आपने इस लेख की शुरुआत में पढ़ा, हमारा सबसे निकटतम तारा अल्फा सेन्टोरी है जो तकरीबन 40 लाख करोड़ किलोमीटर दूर है। और यह दूरी इतनी अधिक है कि प्रकाश को भी, जो कि ब्रह्मांड में सबसे तेज़ गति से चलने वाली चीज़ है, हम तक पहुंचने में चार वर्ष लग जाएंगे। (प्रकाश वर्ष विशाल खगोलीय दूरियों को नापने की सुलभ इकाई है। प्रकाश की गति एक सेकंड में लगभग तीन लाख किलोमीटर होती है। इस गति से प्रकाश एक वर्ष में जितनी दूरी तय करता है, उसे एक प्रकाश वर्ष कहते हैं।) जबकि सूर्य से प्रकाश को हम तक पहुंचने में मात्र आठ मिनिट से कुछ अधिक समय लगता है। इस तरह हम कहते हैं कि अल्फा सेन्टोरी हमसे चार प्रकाश वर्ष दूर है। देखा जाए तो खगोलशास्त्र में चार प्रकाश वर्ष की दूरी भी अपेक्षाकृत एक छोटी दूरी है। हमारी मंदाकिनी आकाशगंगा (मिल्की वे) के अधिकांश तारों के बीच की दूरी ही कई प्रकाश वर्ष का पहाड़ा पढ़ा देती है। और तो और ब्रह्मांड की कोई भी दो मंदा-किनियों के बीच की दूरी दस लाख प्रकाश वर्ष से कम नहीं है। तो यदि हम सारी मंदाकिनियों के तारों के बीच की औसत दूरी निकालें तो वह तकरीबन एक हज़ार प्रकाश वर्ष आएगी। अब हम ऊपर बताए गए सूत्र का उपयोग कर वह दूरी निकालें जो हमारी नज़र को किसी दिशा में बाधा पहुंचाने वाले तारे को देखने के लिए तय करनी होगी। तो वह आएगी लगभग 10^{24} प्रकाश वर्ष यानी एक लाख महाशंख प्रकाश वर्ष। या यूं कहें कि '1' के बाद '24' शून्य और रखने होंगे।

आखिर तारे की उम्र कितनी

इस दूरी की तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते। प्रकाश को भी इतनी लंबी दूरी तय करने में 10^{24} वर्ष लग जाएंगे। इस तथ्य से हमारा प्रश्न एक नया मोड़ ले लेता है। क्या कोई भी तारा इतने वर्ष अस्तित्व में रहेगा जितना कि उसके प्रकाश को हम तक पहुंचने में लगेगा? और क्या ब्रह्मांड भी इतने अधिक सालों से अस्तित्व में

है? क्या होगी भला ब्रह्मांड की उम्र?

एक से बढ़कर एक जटिल सवाल उठे रहे हैं। पर घबराने की बात नहीं है। वास्तव में इन जटिल सवालों के उत्तरों में ही छुपा है हमारे सीधे-सादे सवाल का उत्तर। अब तक कहीं आप सवाल तो नहीं भूल गए – सवाल था कि रात को अंधेरा क्यों होता है? हम पलटकर यह मांग भी कर सकते हैं कि सृष्टि की विवेचना ऐसी हो कि हमारा यह छोटा-सा अवलोकन भी उस विवेचन में स्पष्ट हो जाए। चलिए, थोड़ी देर के लिए पहला रास्ता ही अपनाते हैं और देखते हैं कि जितना हम ब्रह्मांड के बारे में जानते हैं, क्या वह पर्याप्त है रात के अंधेरे को समझने के लिए। वास्तव में हमारे पास इस बात का कोई जवाब नहीं है कि ब्रह्मांड का अस्तित्व अनंत काल से है या नहीं! आज प्रचलित आम धारणा यह है कि ब्रह्मांड का अस्तित्व अनंतकाल से नहीं है! लेकिन दूसरी ओर इस संभावना को भी निरस्त नहीं किया जा सकता कि ब्रह्मांड का अस्तित्व अनंतकाल से ही है! बहरहाल, चलिए थोड़ी देर के लिए यह मान लिया जाए कि ब्रह्मांड का अस्तित्व अनंतकाल से रहा है। लेकिन क्या तारे भी अनंतकाल से अस्तित्व में हैं? खगोल वैज्ञानिकों के प्रयास से इसका उत्तर हमें पता है। हम यह जानते हैं कि तारे अनंतकाल तक नहीं जीते – बल्कि उनकी कुछ सीमित आयु होती है। जब उनका ईंधन खत्म हो जाता है तो वे जगमगाना छोड़ देते हैं और 'मर' जाते हैं। यह प्रक्रिया कई सौ करोड़ वर्षों तक चलती रहती है। जो तारा जितना अधिक विशाल एवं चमकीला होगा उतना ही ज़्यादा ईंधन वह खपाएगा। ऐसे तारे अपना जीवन बड़े ही भव्य धमाके के साथ समाप्त करते हैं। इन चमकदार धमाकों को अधिनवतारे (Supernova) के नाम से जाना जाता है। ऐसा ही एक धमाका फरवरी 1987 में 'मैग्लेन के बड़े बादल' नामक मंदाकिनी में हुआ है।

अब प्रश्न यह है कि तारों की औसत आयु कितनी है? यही कुछेक सौ करोड़ वर्ष! जब हम देख चुके हैं कि प्रकाश को तारों से हम तक पहुंचने में कम से कम औसतन 10^{24} वर्ष लगते हैं, जो हमारी दृष्टि रेखा को हर दिशा में सीमित कर देते हैं। या यूं कहें कि इस दूरी पर हमें तारों से पटा आकाश ही दिखाई देगा। दूसरे शब्दों में तारे उतने समय तक नहीं जीते हैं जिससे यह तय हो पा सके कि उनका प्रकाश निरंतर हम तक पहुंचे, और वह भी उतनी दूर से जहां हम उन्हें आकाश को पाटता हुआ देख पाएं। इसलिए रात को अंधेरा होता है। क्योंकि जो तारे आकाश को जगमगाने वाले थे वे वास्तव में मर चुके हैं। यद्यपि मरे हुए तारों से नए तारे भी बनते हैं और

यह क्रम चलता रहता है। पर फिर भी तारे कभी भी इतनी मात्रा में नहीं होते हैं कि उनकी रोशनी से ब्रह्मांड जगमगा सके।

रात अंधेरी इसलिए

उपरोक्त तर्क को पलटकर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि रात को अंधेरा इसलिए रहता है क्योंकि तारे अनंतकाल तक नहीं जीते। इस पलटे हुए तर्क की शक्ति यह है कि इसके लिए यह जानना आवश्यक नहीं कि ब्रह्मांड का अस्तित्व कब से है? अगर ब्रह्मांड की आयु को सीमित मान भी लिया जाए तो वह किसी भी हालत में उन तारों की आयु से कम नहीं हो सकती जो कि स्वयं उसी ब्रह्मांड के एक अंश हैं। कुल मिलाकर निष्कर्ष यह है कि तारों की सीमित आयु ही रात के अंधकार का मुख्य कारण नज़र आती है। और भी कारण हो सकते हैं जो ब्रह्मांड की प्रकृति पर निर्भर होते हैं। जैसे कि ब्रह्मांड फैल रहा है, इसके कारण भी दूर के तारों की रोशनी तीन-चार गुना कम हो जाती है।

इस बहस से यह बात तो स्पष्ट होती है कि वैज्ञानिक प्रगति या खोज के लिए जटिल उपकरण या गणित के बड़े-बड़े सूत्र आवश्यक नहीं हैं; बल्कि इन उपकरणों और सूत्रों की जड़ में बसे वे मासूम सवाल आवश्यक हैं जो हम कुछ जानने की प्रक्रिया में लगातार पूछते हैं। ज़रूरत है तो सही प्रश्नों को उठा पाने की क्षमता, और इससे भी ज़्यादा ज़रूरी है इन प्रश्नों से निकले उत्तरों को स्वीकारने की। चाहे ये उत्तर हमारे अब तक के विश्वास को, समझ को कितना भी बड़ा धक्का क्यों न पहुंचाएं। हां, इन उत्तरों को खोजने की प्रक्रिया में उपकरण और सूत्र अवश्य ही अपनी पूरी जटिलता के साथ उपस्थित हो सकते हैं, लेकिन वे रहेंगे अंततः साधन मात्र ही।

तो अगली बार आप जब अंधियारी रात में घर से बाहर निकलें और ऊपर आसमान में चमकते तारों का झुंड देखें तब वह सीधा-सा प्रश्न अवश्य पूछें जो कि प्रसिद्ध ब्रह्मांडशास्त्री हरमन बोंडी के अनुसार 'सुदूर ब्रह्मांड से हमारा नाता जोड़ने वाली पहली कड़ी' बना।

सुवीर सरकार: खगोलशास्त्री; खगोलशास्त्र की समसामयिक ज्वलंत समस्याओं पर शोधकार्य। स्रोत फीचर सेवा में दो वर्षों तक कार्य। फिलहाल इंग्लैण्ड में रहते हुए शोधकार्य कर रहे हैं।

यह लेख 'स्रोत फीचर सेवा' के फरवरी 1989 अंक से लिया गया है।

क्या हैं ये जुड़वा

जुड़वां भाई एंग और चांग।

चेतना खरे

जुड़वां शब्द सुनते ही हम सभी के दिमाग में तुरंत ही दो हमशक्ल भाई या बहनों की तस्वीर उभरती है, जिन्हें हम बमुश्किल ही पहचान पाते हैं। जैसे, राम-श्याम या सीता-गीता के नामों से फिल्मों में दिखाई देने वाले जुड़वां पात्र। यह तो हुई सिनेमा की बात लेकिन हकीकत में हमारे जान-पहचान वालों के घरों में कभी-कभार जुड़वां बच्चे होने की
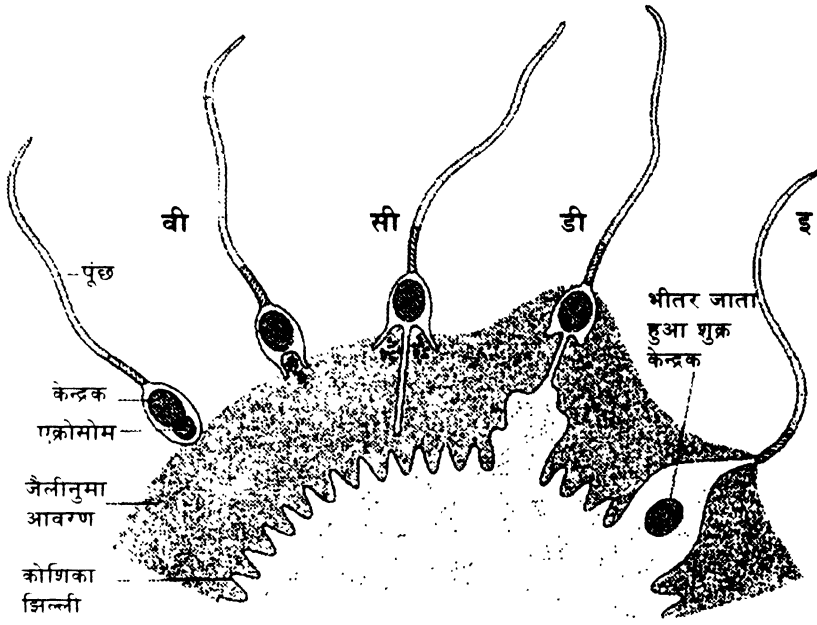
निषेचन की प्रक्रिया: शुक्राणु और अंडाणु के बीच होने वाली निषेचन क्रिया को यहां क्रमवार दिखाने की कोशिश की गई है।

ए: शुक्राणु करीब आते हुए अंडाणु की बाहरी सतह के जेलीनुमा आवरण को छू लेता है।

बी: शुक्राणु के आगे के सिरे पर स्थित एक्रोमोम की कोशिका झिल्ली, अंडाणु कोशिका की झिल्ली से जुड़ जाती है और एक्रोसोम में मौजूद एंज़ाइम को छोड़ती है। ये एंज़ाइम अंडाणु को चारों ओर से घेरे हुए जेली के साथ क्रिया करते हैं।

सी: एक नलीनुमा संरचना बनती है जो जेली को परे सरकाती हुई अंडाणु की कोशिका झिल्ली तक पहुंचने की कोशिश में है।

डी: यह नली अंड कोशिका की झिल्ली से जुड़ जाती है। अब शुक्र कोशिका और अंड कोशिका के मिलन के बीच में किसी भी तरह की बाधा नहीं है।

इ: और . . . . अब शुक्राणु का केन्द्रक अंड कोशिका में चला जा रहा है। बाहर सिर्फ बच गई शुक्राणु की दुम।

खबर हमें पता चलती है। अखबारों में भी दो से अधिक बच्चों के एक साथ पैदा होने की खबरें सभी ने पढ़ी हैं।

गोल-माल लगता मामला

इन सब बातों पर सोचो तो पहले तो सारा मामला गोल-माल-सा लगता है। किन्तु मामले की तह तक जाने के लिए भ्रूण बनने के भी पहले की कुछ घटनाओं को समझना होगा।

कुछ मोटी-मोटी बातें तो हम जानते ही हैं, जैसे – लैंगिक प्रजनन में जब शुक्राणु का मेल अंडाणु से होता है तब नए जंतु की शुरुआत
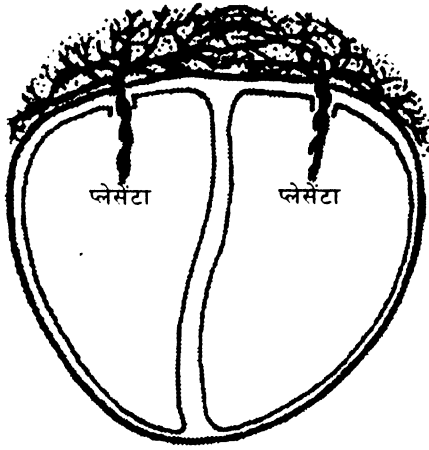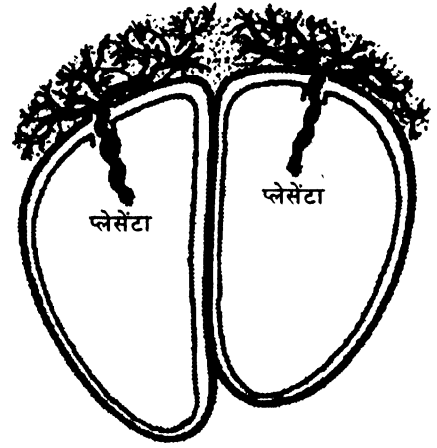
गर्भाशय में भ्रूण का विकास एक तरल से भरी थैलीनुमा संरचना में होता है। एक ही अंडे से बन रहे जुड़वां में थैली एक ही होती है जिसे यूनिवॉलर कहा जाता है। यदि जुड़वां दो अलग–अलग अंडाणुओं से बन रहे हों तो दोनों बच्चों के लिए दो अलग-अलग थैलियां होंगी जिन्हें बाइनोवॉलर कहा जाता है।

भ्रूण के रूप में होती है। इंसानों में मादा का अंडाशय एक बार में एक अंडाणु छोड़ता है जबकि नर के शुक्रकोश लाखों की संख्या में शुक्राणु बनाते हैं। यानी एक अंडाणु को निषेचित करने के लिए लाखों की फौज तैयार है।

जनन क्रिया के दौरान अंडाणु को निषेचित करने के लिए लाखों की तादाद में शुक्राणु अंडाणु की ओर चल पड़ते हैं। लेकिन अंडाणु के पास तक पहुंच सकने वाले शुक्राणुओं की संख्या काफी कम होती है और इनमें से कोई एक शुक्राणु ही अंडाणु को भेद पाने में सफल हो पाता है। शुक्राणु की पूंछ बाहर ही रह जाती है और उसका केन्द्रक अंडाणु के केन्द्रक से मिल जाता है। यही निषेचन है (देखिए चित्र)। यह तो हुई सामान्य निषेचन क्रिया, परन्तु जुड़वां कैसे बनते हैं?

यदि सामान्य स्थितियों में बने भ्रूण के विकास की प्रारंभिक अवस्था (दो या चार कोशिकीय अवस्था) में इस भ्रूण में समसूत्री विभाजन हो जाए तो दो समान भ्रूण तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार से दो समान लिंग व रंगरूप वाली जुड़वां संतानें पैदा होंगी। ऐसे बच्चे समरूप या एक ही अंडाणु से बने (Identical or Uniovular Twins) कहे जाते हैं।

लेकिन यदि किन्हीं परिस्थितियों में एक से अधिक अंडाणु विकसित हो जाते हैं तो उन्हें दो पृथक शुक्राणुओं द्वारा निषेचित किया जाएगा। और परिणामस्वरूप उत्पन्न संतानें लिंग व रंग-रूप दोनों में अलग-अलग हो
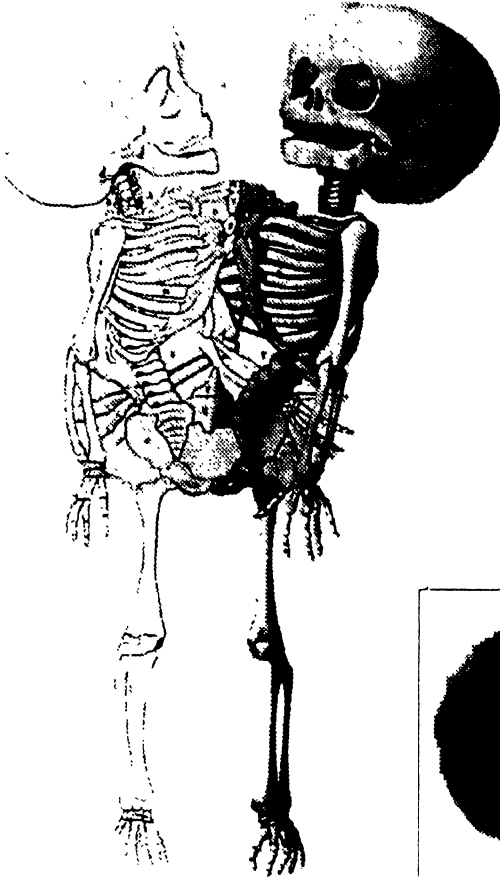
बाएं: पेरिस के एक संग्रहालय में रखा हुआ रीटा-क्रिस्टीना का कंकाल। सन् 1829 में पैदा हुई इन बहनों का परस्पर जुड़ा हुआ कंकाल। इन जुड़वां बहनों की कमर के ऊपरी हिस्से से तो धड़ विकसित हो गए लेकिन निचला हिस्सा एक ही रहा। इन जुड़वां बहनों की ज़िंदगी पांच महीनों की थी।
नीचे: रीटा-क्रिस्टीना का एक कलाकार द्वारा बनाया गया रेखाचित्र।

सकती हैं। ऐसे जुड़वां बच्चे unidentical or fraternal twins कहलाते हैं।

दो यानी जुड़वां बच्चे होना एक सामान्यत: दिखाई दे जाने वाली घटना है। एक अनुमान के अनुसार एक साथ तीन बच्चे पैदा होने की घटना 8,000 पैदाइशों में एक बार होने की संभावना रखती है और चार बच्चे होना तो 700,000 पैदाइशों में से एक मामले में ही देखा जाता है।

एक-दूजे से जुड़े हुए

कभी-कभी जुड़वां बच्चों के कमर से ऊपरी या कमर से नीचे के हिस्से एक-दूसरे से जुड़े हुए होते हैं। इन जुड़वां बच्चों को सियामीज़ जुड़वां (Siamese Twins/conjoined twins) कहते हैं। इस तरह की घटनाएं आइडेंटिकल ट्विन में ही देखी जाती हैं। पेरिस के एक म्यूज़ियम में तो सियामीज़ जुड़वां के कंकाल भी सहेजकर रखे गए हैं। वहां रखे कंकालों

पेरिस के संग्रहालय में कंकाल को आधार मानकर कलाकार द्वारा बनाया गया एक रेखाचित्र। जुड़वां बच्चों में सिर और गर्दन तो एक ही है, लेकिन कंधों से नीचे का पूरा शरीर दो अलग हिस्सों में बंट गया है।

में एक कंकाल रीटा-क्रिस्टीना जुड़वां बहनों का है। इनके कमर के ऊपरी हिस्से में दो धड़, दो सिर हैं जबकि कमर से निचला हिस्सा एक सामान्य इंसान का सा है। इसी म्यूज़ियम में रीटा-क्रिस्टीना से विपरीत एक कंकाल ऐसा है जिसमें जुड़वां बच्चों का सिर तो एक ही है लेकिन बाकी धड़ दो बच्चों का है।

ऐसे बच्चों के लंबे समय तक जीवित रहने की कम ही घटनाएं प्रकाश में आई हैं। फिर भी बैंकॉक में जन्मे एक सियामीज़ जुड़वां एंग और चांग बंधुओं ने लंबे समय तक साथ-साथ ज़िंदगी गुज़ारी और क्रमशः 12 और 10 बच्चों के पिता भी बने।

सियामीज़ जुड़वां कैसे बनते हैं इस सवाल का जवाब देने की काफी कोशिशें हुई हैं लेकिन अफसोस कि अभी भी तसल्लीबख्श जवाब का इंतज़ार है। अभी तक जो समझ बन सकी है उससे ऐसा लगता है कि आइडेंटिकल ट्विन बनने वाली स्थितियों में निषेचित अंडे में कोशिकाओं के दो समूह बनने की प्रक्रिया बीच में ही रुक जाती है जिससे विकसित होने वाले भ्रूण में जहां तक कोशिका के दो समूह बन गए थे वहां तक तो दो अलग-अलग शरीर बन जाते हैं लेकिन शेष शरीर एक ही होता है। अब शरीर के ऊपरी हिस्से जुड़े होंगे या निचले हिस्से यह इससे तय होगा कि निषेचित अंडे में कोशिकाओं के दो समूह बनने की प्रक्रिया कहां तक सफलता पूर्वक चली। यह मामला काफी उलझाव भरा है।

तो बस जुड़वां बच्चों के बारे में बात इतनी-सी ही थी, उम्मीद है अगली बार यदि किसी राम-श्याम या सीता-गीता को देखेंगे तो आपका नज़रिया कुछ फर्क होगा।

चेतना खरे: विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन से प्राणी विज्ञान में एम. एससी. कर रही हैं।

क्यूं आंकते हैं हम बच्चों को कम कर के?

कैरन हैडॉक

ज़रा विश्वास करके तो देखें बच्चों की क्षमता पर. . . और देखिए फिर उनके चेहरे पर चमक. . . आपकी कक्षा तो बिलकुल बदल ही जाएगी!

जिन्होंने भी बच्चों को पढ़ाने की कोशिश की है – चाहे वो माता पिता हों या शिक्षक – उनके खाते में सफलता के साथ-साथ असफलता और निराशा भी दर्ज होती है। ऐसे में एक सवाल उठता है कि आखिर इतना मुश्किल क्यों है पढ़ाना?

एक मुख्य समस्या तो यह है कि पढ़ाने वालों का विश्वास बच्चों की क्षमताओं या योग्यताओं पर काफी कम होता है। यह बात मैं यूं ही नहीं कह रही बल्कि एक अभिभावक, एक शिक्षक और एक शिक्षक प्रशिक्षक होने के आधार पर कह रही हूं।

कई बार मैं उस पाठ को लेकर बच्चों (दूसरी, तीसरी या फिर पांचवीं के) के सामने खड़ी होती हूं जो मुझे उन्हें पढ़ाना है। मेरे पास कुछ जानकारी है जो मैं बच्चों को देना चाहती हूं। लेकिन मैं यह जानकारी उन्हें क्यूं देना चाहती हूं? क्योंकि मुझे लगता है कि वे इसके बारे में नहीं जानते; इसे जानने में उन्हें मज़ा आएगा; यह दुनिया के बारे में उनके नज़रिए को विस्तृत करने में मदद करेगी; यह उन्हें बेहतर इंसान बनने में मदद करेगी, भले ही थोड़ा-सा।

लेकिन कभी कभार पढ़ाना शुरू करने से पहले ही मेरे दिमाग में यह ख्याल बुदबुदाना शुरू कर देता है कि शायद उन्हें वह पहले से ही मालूम हो जो मैं उन्हें बताना चाहती हूं। तो उन्हें कुछ बताने की बजाए मैं उनके सामने सवाल रख देती हूं। दस में से

करीब नौ बार मैं पाती हूं कि कक्षा में कम-से-कम कुछ ऐसे बच्चे होते हैं जो उस सवाल का जवाब दे पाते हैं और जवाब उतना ही बेहतर होता है जितना कि मेरा जवाब। और बच्चे जो जवाब देते हैं वो मेरे जवाब से भिन्न होता है लेकिन गलत नहीं होता। कुछ बच्चे तो सवाल को एक मज़ेदार और बिलकुल ही नई दृष्टि से देखते हैं। यहां तक कि वे 'बुद्धू' बच्चे भी – जो किसी कोने में बैठे दूसरे बच्चों और शिक्षकों के ताने सहते रहते हैं – प्रेरित करने पर, कभी-कभार बोल उठते हैं और सवाल को एक बिलकुल ही नई नज़र से देखते हैं। तो इस तरह पूर्व-तैयार मेरा लैक्चर कक्षा में एक मज़ेदार बहस में परिवर्तित हो जाता है। इस बहस में हम सभी का कुछ-न-कुछ योगदान होता है और सभी एक दूसरे से कुछ-न-कुछ सीखते हैं। मुझे यहां यह बताना चाहिए कि अगर कक्षा में बच्चों की संख्या अधिक है तो शायद यह तरीका अख्तियार करना संभव नहीं है। लेकिन मैं इस मामले में सौभाग्यशाली हूं कि मुझे कभी भी 25 बच्चों से अधिक की कक्षा को नहीं पढ़ाना पड़ा है।
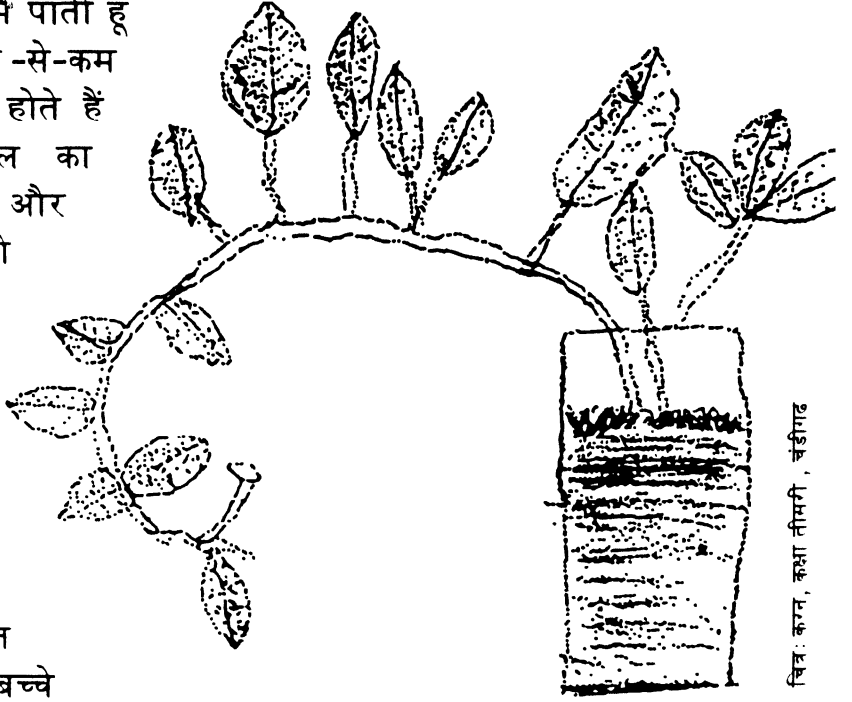
चित्र: करन, कक्षा तीसरी, चंडीगढ़

इस पूरे दौर के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंची हूं कि मैं बच्चों को कम करके आंकती हूं। हालांकि मैं बच्चों को ऐसे मौके देने को लेकर काफी सचेत रहती हूं जिसमें वे अपने आपको साबित कर पाएं।

एक बार स्कूल में वार्षिकोत्सव की तैयारी के दौरान अचानक ही मुझसे कहा गया कि स्कूल की बाहरी दीवार पर कुछ बच्चों से एक बड़ा चित्र बनवा दूं। और तो और इस काम को खत्म भी उसी दिन करना था। इस आदेश ने तो मेरी उस दिन की कार्ययोजना

को गड़बड़ कर ही दिया। लेकिन फिर भी यह आग्रह काफी दिलचस्प लगा।

मुझे पूरे मामले में सिर्फ एक ही दिक्कत थी कि दीवार को इनेमल पेंट से पोता जाना था और बच्चों को इस पेंट से काम करने का पहले कोई भी अनुभव नहीं था। सभी बच्चे कक्षा दो और तीन के थे। मैंने अपनी कक्षा के छह-सात बच्चों को बुलाया और उनसे कहा कि उन्हें दीवार पर एक चित्र पेन्ट करना है। मैंने उन्हें एप्रन (लबादे) दिए और बताया कि बड़े ब्रुश को पेन्ट में डुबाने के बाद डिब्बे के किनारे से लगाकर अतिरिक्त पेन्ट को कैसे साफ किया जाता जाता है। साथ ही मैंने उन्हें यह भी बताया कि पेंट की बूंदों को दीवार पर फैलने (बहने) देने से कैसे बचाया जा सकता है।

मैंने दीवार पर एक भी निशान नहीं बनाया, न ही बच्चों से यह कहा कि तुम यह बनाओ या वह। शुरुआत में मैंने उन्हें सिर्फ इतनी सी सलाह दी कि जो भी बनाना बड़ा बनाना क्योंकि दीवार काफी बड़ी है। जब बच्चे चित्र को करीबन आधा बना चुके थे तो कला की ही एक अन्य शिक्षक वहां से गुज़री। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मैंने चित्र को दीवार पर पहले पेंसिल से बना दिया था। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि मैंने कुछ नहीं किया लेकिन मुझे नहीं लगा कि उन्होंने मेरी बात पर यकीन किया हो।

लेकिन किसी तरह, बिना मेरी मदद लिए बच्चों ने दीवार पर जो चित्र बनाया वह किसी भी इंसान को काफी अच्छा लगता। अगर अपनी कहूं तो मुझे तो यह बेहतरीन ही लगा। दिखने में तो यह बिल्कुल साफ समझ में आता था कि इसे बच्चों ने बनाया है, न कि किसी वयस्क ने। लेकिन मेरी राय में तो यह बच्चों वाली बात ही थी जो इसे बिल्कुल अलग और मौलिक बनाती थी।

अगर अपने दिल की बात बताऊं तो शुरुआत में तो मैं थोड़ा आशंकित थी कि बच्चे दीवार का कबाड़ा भी कर सकते हैं। मैं इन बच्चों को पिछले कुछ महीनों से हफ्ते में एक बार कला का विषय पढ़ा रही थी। मैंने पाया था कि कुछ बच्चे तो चित्र बनाने के मामले में काफी सृजनात्मक थे।

अगर मैं इन बच्चों को आम ढर्रे से कला पढ़ा रही होती तो शायद मुझे इनकी योग्यता के बारे में जानकारी नहीं होती। लेकिन मेरा तरीका थोड़ा भिन्न था। मेरे इस तरीके पर स्कूल के कुछ अन्य शिक्षक भी गौर करते रहते थे। एक शिक्षक ने तो एक बार मुझसे पूछा था कि क्या मैं बोर्ड पर कभी कोई चित्र बनाती हूं? मैंने इस बारे में थोड़ा सोचा और पाया कि मैंने तो बच्चों को बोर्ड पर कभी कोई भी चित्र बनाकर नहीं दिखाया।

लेकिन मैं बच्चों से प्रायः यह आग्रह

करती रहती थी कि कभी कॉपी (नकल) मत करो। अगर मुझे कॉपी चाहिए तो मैं फोटोकॉपी की दुकान पर जाकर करवा लूंगी। मैं तो उनसे कहती कि तुममें से हर कोई वैसा चित्र बनाए जैसा कि दुनिया में अभी तक किसी ने नहीं बनाया हो। मैं उन्हें हमेशा कोई न कोई चित्र दिखाती रहती थी लेकिन उनके बनाना शुरू करने से पहले इन्हें हटा लिया करती थी।

कला के किसी गंभीर विद्यार्थी के लिए कॉपी करना निश्चित तौर पर एक काफी उपयोगी अभ्यास हो सकता है। लेकिन इससे भी कहीं महत्वपूर्ण है कि बच्चों को अपनी सृजनात्मकता दिखाने के मौके दिए जाएं, उन्हें मज़ा लेने दिया जाए, उन्हें अपने आपको कला के माध्यम से व्यक्त करने के मौके दिए जाएं। कॉपी करना उनकी इस प्रतिभा को खत्म कर देगा।

कभी-कभार मैं बच्चों से किसी चीज़ को देखने को कहती हूं और कहती हूं कि बनाओ जो तुम देख रहे हो। वे एक दूसरे को काफी गौर से देखते हुए एक-दूसरे का पोर्ट्रेट बनाते हैं। वे जानवरों की तस्वीरें बनाते हैं, उन प्लास्टिक के खिलौनों को देखते हुए जो मैंने उन्हें दिए हैं। ऐसी तस्वीरें बनाते हैं जिसमें कोई रेखा नहीं होती। वो सिर्फ काले सफेद का इस्तेमाल करके चित्र बनाते हैं। वे सीधे-सीधे स्केच पेन से चित्र बनाते हैं जबकि उन्होंने पेंसिल का भी इस्तेमाल नहीं किया होता। वे संगीत से प्रेरित होकर गूढ़

चित्र: शाना, कक्षा तीसरी, चंडीगढ़

चित्र बनाते हैं। वे बिना स्केल उपयोग किए सीधी लाइनें खींच देते हैं।

उन्होंने यह सब चीज़ें पहले कभी नहीं की थीं क्योंकि कला के उनके शिक्षक ने उन्हें कभी भी यह सब कर पाने के योग्य नहीं माना। उनसे कई बार कहा जा चुका है कि तुम्हारा काम बिलकुल भी अच्छा नहीं है और यह बात उनके दिमाग में बैठ चुकी है – कागज़ पर एक भी निशान बनाए बिना या फिर कुछ बनाया उसे रबर से मिटाया, फिर बनाया और मिटाया . . .वे कहते हैं यह तो मुझसे नहीं हो पाएगा। इसे तो आप कर दो।

लेकिन आज तक मैंने किसी भी विद्यार्थी की कॉपी पर कुछ भी नहीं बनाया है – न तो शुरुआत में उन्हें मदद करने के लिए और न ही अंत में तस्वीर को ठीक करने के लिए। मैं हर बार उनसे कहती हूं कि तुम इसे कर सकते हो, मैं जानती हूं कि तुम इसे कर सकते हो। मैं उनसे कहती हूं कि चीज़ों को गौर से देखो और फिर जो भी तुमने देखा है, जैसा देखा है उसे बनाओ। जैसे किसी का पोर्ट्रेट बनाते समय मैं उनसे कहती 'क्या तुमने उसके कंधों को देखा है? कैसे मुड़ते हैं वो? ऐसे ही मोड़ को कागज़ पर बनाओ।'

कला के मामले में बच्चों को जितनी कम-से-कम शिक्षा दी जाए उतना ही आंसान होता है उनके लिए खुद प्रयास करके कुछ बनाना।

मुझे अभी तक कोई भी बच्चा ऐसा नहीं मिला है जो अपने आप कोई चित्र नहीं बना पाया हो।

वैसे सृजनात्मक लेखन, विज्ञान, कविता और सामाजिक अध्ययन को लेकर भी मेरे अनुभव ऐसे ही रहे हैं। जब भी मैं बच्चों को मौका देती हूं और ज़ोर देती हूं कि वे अपने आप ही सोचें तो वे मेरी उम्मीद को पूरा करते हैं।

कक्षा में मेरा सबसे पसंदीदा हिस्सा होता है बच्चों के चेहरों पर खुशी की उत्तेजना देख पाना – उस समय जब कि उन्हें लगता है कि वो खुद अपना काम कर सकते हैं और जब वो मुझे अपना काम दिखाते हैं। बिल्कुल खुशी से कूदते हुए और मैं उन्हें अपनी टिप्पणी देती हूं जो उनका उत्साह बढ़ाने वाली होती है। और एक शिक्षक को बच्चों के ऐसे समूह के अलावा क्या चाहिए, जिसको अपना काम करने में इतना मज़ा आता है कि वे अंत में भी और कागज़ देने का आग्रह करते हैं ताकि वे और चित्र बना सकें, आग्रह करते हैं कि उन्हें और मौके दिए जाएं, ताकि वे और कविताएं लिख सकें या और कहानियां सुना सकें।

कैरन हैडॉक: स्वतंत्र चित्रकार; चंडीगढ़ की एक शाला में अध्यापन कार्य कर रही हैं। बायो-फिज़िक्स में शोधकार्य।

खोजिए सही रास्ता

नीचे एक वर्ग बना है अंको से भरा। जहां शुरू लिखा है वहां से शुरू करना है और पहुंचना है नीचे के आखिरी खाने तक जहां 8 का अंक है। आपके पास चलने के लिए आठ चाले हैं। पहली चाल में आप को एक खाना चलकर 1 पर पहुंचना है। दूसरी चाल में आप यहां से दो खाने चल सकते हैं लेकिन पहुंचना 2 पर है। इसी तरह तीसरी चाल में आप अगली चाल से तीन खाने आगे बढ़ेंगे लेकिन जिस खाने पर आप पहुंचे हैं वहां 3 का अंक होना चाहिए। इसी तरह चालें चलते जाएं। आठवीं चाल में आपको आठ खाने चलना है और आखिरी खाने तक पहुंचना है जहां 8 लिखा है।

इस खेल को खेलने की दो शर्ते हैं।

1. जिस खाने को एक बार इस्तेमाल कर चुके हैं वहां दूसरी बार नहीं जा सकते। 2. आप चालें सिर्फ आड़ी या खड़ी चल सकते हैं, टेढ़ी या तिरछी नहीं। *तो शुरू हो जाइए पेंसिल लेकर।*

शुरू	1	3	2	5	4	4	6
2	4	5	3	4	6	7	4
5	2	3	5	3	5	6	5
4	3	6	3	5	4	7	4
3	4	7	6	5	7	6	5
5	6	5	3	7	6	4	7
4	7	4	5	6	5	5	7
6	5	7	7	5	6	4	8

चित्र आउटलुक अक्टूबर 98

प्रो. पी. के बोस, मैहर (ज़िला सतना) के पास की पहाड़ियों पर जीवाश्मों की खोज करते हुए।

प्रीकैम्ब्रियन जीवाश्म की खोज

माधव केलकर

कुछ दशकों पहले तक यह मान्यता थी कि प्रीकैम्ब्रियन चट्टानों में जीवाश्म नहीं मिलते। आज हमने साढ़े तीन अरब साल पुराने जीवाश्म खोज निकाले हैं। लेकिन हमारी मुख्य समस्या यह है कि हमारे फॉसिल रिकॉर्ड में केवल चंद कड़ियां ही हैं। ऐसी ही एक कड़ी को ढूंढ निकालने की कोशिश की है एक भारतीय भूवैज्ञानिक ने, और वह भी भारत की ज़मीं पर . . .।

कुछ महीने पहले अखबार की सुर्खियों में जादवपुर वि. वि. के प्रोफेसर पी. के. बोस का नाम आया था। हुआ कुछ यूं था कि बोस ने चुरहट (म. प्र. के रीवा ज़िले में) के पास प्रीकैम्ब्रियन चट्टानों में जटिल बहुकोशीय जंतुओं के जीवाश्म* (फॉसिल्स) खोज निकाले थे। जिन चट्टानों में ये फॉसिल्स पाए गए थे उन्हें एक अरब साल से भी ज़्यादा पुराना माना जाता है। इस आधार पर इन जीवाश्मों की आयु भी 110 करोड़ साल बताई गई है। बोस की इस खोज को वैज्ञानिक किस हद तक मान्यता देते हैं यह अभी बहस का विषय है लेकिन यह सब पढ़ने के बाद मुझे यह बात परेशान करने लगी कि प्रो. बोस की खोज में क्या खास बात है और ऐसी कौन-सी पेचिदगियां हैं जो इस पर इतनी बहस हो रही है।

इस पूरे मुद्दे में पेचिदगियां कई सारी हैं इसलिए बेहतर होगा इन्हें सिलसिलेवार समझने की कोशिश करें।

जीवाश्मों ने दिए सबूत

धरती पर जीवन के विकास को लेकर इंसान काफी परेशान रहा है। धार्मिक मान्यताओं में जीवन के विकास की कई तरह की व्याख्याएं दी जाती रही हैं। लेकिन 19 वीं सदी में पहली बार वैज्ञानिक तर्कों और जीवाश्मों के साक्ष्य के आधार पर पृथ्वी पर जीवन के विकास को समझने की कोशिश की गई। 19 वीं सदी में पृथ्वी पर जीवन के विकास को लेकर काफी सारे शोधकार्य हो रहे थे। इन शोधकार्यों में जीवाश्मों का बारीकी से अध्ययन करके यह पता लगाने की कोशिशें हो रही थीं कि धरती पर विभिन्न जीवों के आगमन का क्रम पता किया जाए। इन जीवाश्मों की मदद से कुछ हद तक धरती पर जीवन का विकासक्रम समझा जा सका। उस समय जिन चट्टानों में सबसे प्राचीन फॉसिल पाए गए थे उन्हें कैम्ब्रियन युग की चट्टानें कहा गया; जिन्हें अब 60 करोड़ साल पुराना माना जाता है। जीवाश्मों की मदद से (यहां उन जीवाश्मों की बात हो रही है जो नंगी आंखों से देखे जा सकें) लगभग पिछले 60 करोड़ सालों के बारे में ही जानकारी मिल सकी।

एक बात सभी विकास-वादियों और जीवाश्मविदों की समझ में आ रही थी कि जिन जीवों को क्रमवार जमाया

* जीवाश्म के मायने हैं चट्टानों में पाए जाने वाले जीव के किसी भी किस्म के अवशेष। जीवाश्मों के अंतर्गत लाखों साल पुराने हाथी के अवशेष से लेकर किसी चट्टान में पाए जाने वाले एक कोशिकीय जीवों के अवशेष को शामिल किया जाता है। इस लेख में अधिकांश जगह एक कोशिकीय माइक्रोफॉसिल्स की ही बात की गई है।

नामकरण की परंपरा

भूविज्ञान में भी अन्य विषयों की तरह चट्टानों व फॉसिल्स के नामकरण करते समय स्थान, खोजकर्ता, किसी प्रसिद्ध व्यक्ति, किसी स्थानीय जनजाति तथा स्थानीय परिवेश को ध्यान में रखा जाता है। जैसे भारत के संदर्भ में ही बात करें तो चट्टानों के एक समूह को गोंडवाना ग्रुप नाम दिया गया है। उड़ीसा में देखी गई एक चट्टान को स्थानीय खोंड़ा जनजाति के नाम पर खोंडालाइट नाम दिया गया, एक अन्य चट्टान का नाम गोंडाइट रखा गया है। आपको यह जानकर हैरत होगी कि एक चट्टान का नाम चारनोकाइट रखा गया है जिसे संभवतः कलकत्ता शहर की नींव रखने वाले जॉब चारनॉक की याद में रखा गया है। भूविज्ञान के काल चक्र में कैम्ब्रियन, डिवोनियन, सिलुरियन, ओर्डोविशियन जैसे नामों में भी यही स्थानीय तत्व काम कर रहा है।

गया है वे सभी बहुकोशीय जीव हैं लेकिन पृथ्वी पर जीवन की शुरुआत एकदम बहुकोशीय जीवों से नहीं हुई होगी। 19 वीं सदी के जीवाश्म विज्ञानी और विकासवादी खोजते रह गए लेकिन माइक्रोफॉसिल को खोज पाने की तकनीकी जानकारी के अभाव में उन्हें 60 करोड़ साल से पुरानी चट्टानों (जिन्हें 'प्रीकैम्ब्रियन' या 'कैम्ब्रियन पूर्व' कहा गया) में कोई भी जीवाश्म नहीं मिला और उन्होंने यह मान लिया कि प्रीकैम्ब्रियन चट्टानों में जीवन के कोई साक्ष्य नहीं मिलते।

बीसवीं सदी में धरती पर मौजूद सबसे पुरानी चट्टानों* के बारे में जानकारी मिलने के बाद यह समस्या और गहराने लगी कि चार अरब साल पहले धरती पर्याप्त रूप से ठंडी हो चुकी थी तो फिर आरंभिक जीवन की कड़ियां उन चट्टानों में फॉसिल के रूप में क्यों नहीं मिलतीं? एकदम 60 करोड़ साल पहले ही धरती पर बहुकोशीय जीवों के जीवाश्म क्यों मिलने लगते हैं? क्या वाकई बीच का करोड़ों सालों का दौर बिना जीवन का था?

भूविज्ञान में चट्टानों की जब चर्चा होती है तो लाखों, करोड़ों सालों में बातें होती हैं। चट्टानों की उम्र पता करने में यूरेनियम, पोटेशियम, लेड के रेडियो आइसोटोप्स ने खासी मदद की है। इनकी मदद से कनाडा में 3.96 अरब साल पुरानी चट्टान खोजी गई, तो ग्रीनलैंड में 3.80 अरब साल वाली सबसे पुरानी अवसादी चट्टान खोजी गई है। इन्हीं विधियों से धरती की सभी चट्टानों को कैम्ब्रियन पूर्व, कैम्ब्रियन, डिवोनियन......., ट्राइसिक, जुरासिक, क्रिटेशियस जैसे काल खंडों में विभाजित किया गया है।

यह प्रीकैम्ब्रियन है क्या बला

यहां पहले यह समझ लेना उचित होगा कि प्रीकैम्ब्रियन चट्टानों में फॉसिल खोजना दिक्कत का काम क्यों है। अधिकांश प्रीकैम्ब्रियन चट्टानें आग्नेय या अवसादी उत्पत्ति की हैं। दुनिया में प्रीकैम्ब्रियन चट्टानें दक्षिण अफ्रीका, कनाडा, ग्रीनलैण्ड, स्कैंडेनेविया, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका और भारत (भारत में कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश) में फैली हुई हैं। ये चट्टानें 60 करोड़ साल से चार अरब साल पुरानी हैं। प्रीकैम्ब्रियन चट्टानों में से सिर्फ अवसादी चट्टानों में जीवाश्म मिलने की संभावना होती है। इन अवसादी चट्टानों में से अधिकांश काफी हद तक कायांतरित (Metamorphosed) हो चुकी हैं। जब अवसादी चट्टानों का कायांतरण हो रहा होता है तो अत्याधिक ताप और दबाव के कारण चट्टान में इतने अधिक परिवर्तन हो जाते हैं कि उनमें जीवाश्म मिलने की संभावना नहीं होती। इसलिए जब प्रीकैम्ब्रियन अवसादी चट्टानों में फॉसिल खोजने का काम शुरू हुआ तो उन चट्टानों पर ध्यान दिया गया जो कायांतरित न हुई हों या कम-से-कम कायांतरण के दौर से गुज़री हों।

एडियाकरा के जीवाश्म

प्रीकैम्ब्रियन चट्टानी परतों में जीवाश्म खोजने का सिलसिला एडियाकरा पहाड़ी से शुरू होता है। दक्षिण ऑस्ट्रेलिया की एडियाकरा पहाड़ियों पर 1947 में, कुछ बहुकोशीय जीवों के जीवाश्म खोजे गए। (ये छोटे थे परन्तु सूक्ष्मदर्शी के बिना देखे जा सकते थे।) ये जीवाश्म छापों के रूप में थे और यह साफतौर पर पता चल रहा था कि इन जीवों का शरीर नरम हिस्सों से बना था। इनकी आयु के बारे में अनुमान है कि ये 68 करोड़ साल पुराने हैं। छापों के आधार पर इन जीवों की पहचान वर्तमान अकशेरुकों (इनवर्टिब्रेट) — स्पंज, जैलीफिश वगैरह से की गई है। एडियाकरा जीवों की मौजूदगी से दुनिया भर में प्रीकैम्ब्रियन चट्टानों में फॉसिल खोजने के काम ने ज़ोर पकड़ा और जल्द ही दुनिया में 20 से भी ज़्यादा स्थानों पर एडियाकरा जीवों के समकक्ष फॉसिल खोज लिए गए थे। वैसे एडियाकरा जीवाश्म बहुत पुराने नहीं हैं लेकिन इनकी खोज से पहली बार ऐसा अहसास हुआ कि खोज कार्य ठीक दिशा में चल रहा है।

गनफ्लिंट जीवाश्म

कामयाबी की अगली मंज़िल अमरीका की लेक सुपीरियर के पश्चिम तटीय इलाके में स्थित गनफ्लिंट थी। गनफ्लिंट में तीन से नौ इंच मोटी काली चर्ट (एक अवसादी चट्टान) की एक परत है जिसमें प्रीकैम्ब्रियन
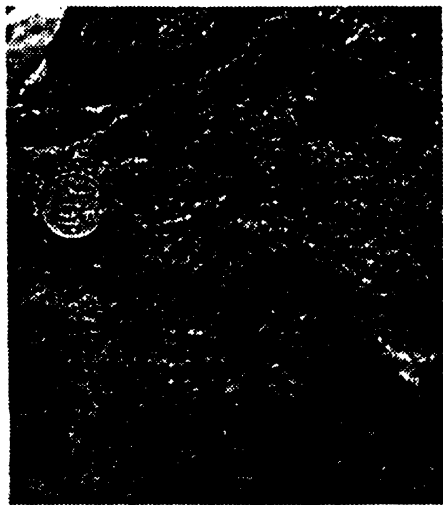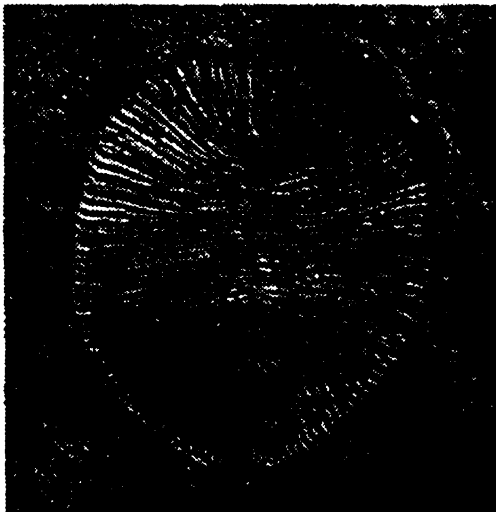
एडियाकरा के जीवाश्म: एडियाकरा पहाड़ी पर मिले जीवों की छाप के फोटोग्राफ।

फॉसिल पाए गए हैं। ये फॉसिल सूक्ष्मदर्शी से देखे जा सकते थे। गन - फ्लिंट परत की आयु के बारे में यह माना जाता है कि यह लगभग 2 अरब साल पुरानी है। 1964 में गनफ्लिंट के जीवाश्मों का अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट हुई कि यहां मिले जीवाश्मों में बैक्टीरिया तथा एलगी जैसी वनस्पतियों की कई प्रजातियां शामिल हैं।

जब गनफ्लिंट जीवाश्मों का अध्ययन किया जा रहा था उन्हीं दिनों एक मज़ेदार वाकया हुआ। एक जीववैज्ञानिक एम. सीगेल मिट्टी में रहने वाले सूक्ष्मजीवों पर शोध कर रहे थे। वे यह जानना चाहते थे कि बहुत ऊंचे तापमान पर, या बिना ऑक्सीजन, या बहुत ही कम ऑक्सीजन की मौजूदगी जैसी वायुमंडलीय स्थितियों में भी मिट्टी में रहने वाले कुछ सूक्ष्म जीव किस तरह जीवित रह पाते हैं। अध्ययन के लिए उन्होंने वेल्स और अलास्का से मिट्टी के नमूने भी इकट्ठे किए थे; और उन्होंने कुछ सूक्ष्म जीव भी खोज लिए थे। उन्होंने जब गनफ्लिंट जीवाश्मों के चित्र देखे तो उन्हें ऐसा महसूस हुआ कि ये जीव तो उनके द्वारा खोजे गए सूक्ष्मजीवों से मेल खाते हैं। सीगेल द्वारा खोजे गए सूक्ष्म जीव की कोशिका में कोई केन्द्रक नहीं था। लगभग इसी तरह की बातें गनफ्लिंट में पाए गए बैक्टिरिया के बारे में भी देखी गई थी। सीगेल की खोज से इस बात की पुष्टि हुई की इस किस्म के सूक्ष्मजीव धरती पर पहले भी थे।

इसके बाद यह पता करने की

अपेक्स चर्ट जीवाश्म: अभी तक खोजा गया सबसे पुराना जीवाश्म। इसे 1993 में जे. विलियम स्कूप ने पश्चिम ऑस्ट्रेलिया से खोज निकाला। यह साढ़े तीन अरब साल पुराने जीवाश्म हैं। स्कूप यह मानते हैं कि ये जीव साइनोबैक्टिरिया समूह से संबंधित हैं और संभवत: प्रकाशसंश्लेषण भी करते थे। उनकी मान्यता का आधार जीवाश्म के रूप में मिले जैविक पदार्थों के विश्लेषण हैं। यहां चित्र में जीवाश्मों के माइक्रोफोटोग्राफ के साथ उनके रेखाचित्र भी दिए गए हैं।

कोशिश की गई कि गनफ्लिंट की दो अरब साल पुरानी वनस्पतियां उस समय प्रकाश संश्लेषण जैसी क्रियाएं करती थीं या नहीं? गनफ्लिंट में जैविक पदार्थों के जो अवशेष मिले थे उनमें कार्बन के दो आइसोटोप कार्बन[12] और कार्बन[13] के अनुपात को पता किया गया। (वायुमंडलीय कार्बन डायऑक्साइड में कार्बन[12], 99 प्रतिशत और कार्बन[13], 1 प्रतिशत होता है।) आमतौर पर जिन वनस्पतियों में प्रकाशसंश्लेषण की क्रिया होती है उनमें कार्बन[13] की मात्रा एक प्रतिशत से भी कम हो जाती है। गनफ्लिंट में मिले जैविक पदार्थ में भी कार्बन[13] की मात्रा कम पाई गई यानी वे एलगी जैसी वनस्पतियां प्रकाशसंश्लेषण करती थीं यह अनुमान लगाया गया।

फिगट्री के जीवाश्म

जब खोज कार्य ने ज़ोर पकड़ा तो दक्षिण अफ्रिका में प्रीकैम्ब्रियन चट्टानों में खोजबीन के दौरान ट्रांसवाल प्रांत के फिगट्री इलाके में एक और सफलता मिली। 400 फीट मोटे चर्ट (एक

किस्म की अवसादी चट्टान) नामक चट्टानी स्तर में कुछ जैविक पदार्थ और सूक्ष्म जीवाश्म (माइक्रोफॉसिल) की छाप देखी गई। रेडियो आइसोटॉप्स विधि से इन चट्टानों की आयु 3.2 अरब साल तय हुई। यानी ये गनफ्लिंट के जीवाश्मों से और एक अरब साल पुराने थे।

फिगट्री के माइक्रोफॉसिल को लेकर सबसे बड़ी दिक्कत यह थी कि जब इन चट्टानों की पतली काट को सूक्ष्मदर्शी से देखा जाता था तो जैविक पदार्थों की परतें ही दिखाई देती थीं। फिर चट्टान के बड़े टुकड़ों से इन जैविक परतों को बाहर निकाल करके (कार्बन रेप्लिका विधि) इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप का इस्तेमाल किया गया तो नलाकार, गोलाकार जैविक

फिगट्री के जीवाश्म: बायां चित्र इयोबेक्टेरियम का इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप से लिया गया फोटोग्राफ। इनमें जीवाश्म में कोशिका की बाहरी और भीतरी परतें दिखाई दे रही हैं। कोशिका भित्ती की मोटाई है 0.15 माइक्रॉन। इस बैक्टिरिया की कोशिका भित्ती की मोटाई वर्तमान बेसिलस बैक्टिरिया की कोशिका भित्ती से मेल खाती है।

नीचे: फिगट्री में पाए गए गोलाकार आरचियोस्फेरॉइड बारबरटोनेसिस के दो थिन सेक्शन फोटोग्राफ दिए गए हैं। इन गोलों का व्यास 20 माइक्रॉन से कम है।
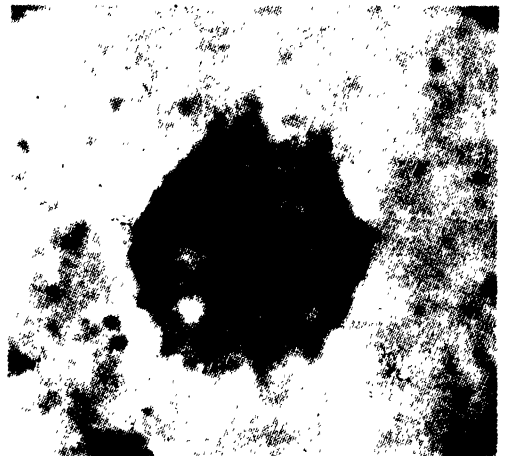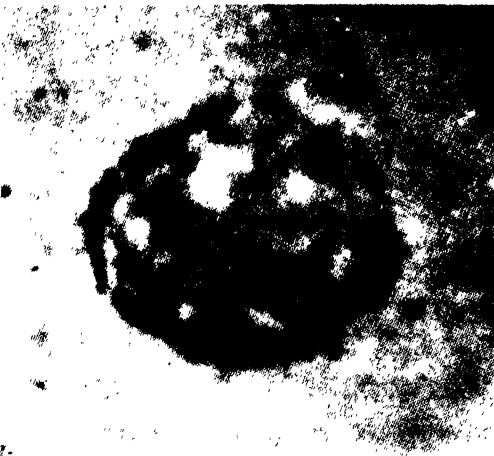
इस तरह पता चलता है माइक्रोफॉसिल का ....

अब तक आपके दिमाग में यह सवाल ज़रूर उठा होगा कि यह पता कैसे चलता है कि चट्टान में माइक्रो फॉसिल हैं या नहीं? सबसे पहले तो प्रीकैम्ब्रियन चट्टानों की खोज की जाती है, फिर इन चट्टानी परतों में भी उन परतों को चुना जाता है जिनका कायांतरण न हुआ हो। उसके बाद इन परतों में खोजबीन शुरू होती है। यदि इन परतों में कार्बनिक पदार्थों की मौजूदगी का पता चलता है तो इनमें जीवाश्म मिलने की संभावना होती है। ऐसी चट्टानों को इकट्ठा करते हैं और फिर एक-एक करके इन चट्टानों के छोटे टुकड़ों को कांच की पट्टी पर चिपकाकर टुकड़ों की घिमाई करके उन्हें आधे मिलीमीटर से कम मोटाई तक घिसा जाता है (इसे थिन सेक्शन कहा जाता है)। फिर साधारण सूक्ष्मदर्शी की मदद से इनका अध्ययन किया जाता है। कभी-कभी इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी की मदद से भी इन चट्टानों का अध्ययन किया जाता है तब जाकर माइक्रोफॉसिल का पता चलता है।

संरचनाएं दिखाई देने लगीं; जिनकी पहचान शुरुआती बैक्टिरिया तथा ब्लू-ग्रीन एलगी के रूप में की गई। एक और खास बात यह थी कि आमतौर पर ब्लू-ग्रीन एलगी कॉलोनी बनाकर रहते हैं लेकिन फिगट्री में ये अलग-अलग थे। नलाकार जीव को इओ-बैक्टेरियम आइसोलेटम (Eobacterium Isolactum) नाम दिया गया। गोलाकार जीवों को आरचियो स्फेरॉयड बारबरटोनेसिस (Archaeo Sphaeroides barbertonesis) नाम दिया गया।

बिटर स्प्रिंग के माइक्रोफॉसिल

ऑस्ट्रेलिया के बिटर स्प्रिंग की प्रीकैम्ब्रियन चर्ट की परतों में कुछ एक कोशीय माइक्रोफॉसिल देखे गए। बिटर स्प्रिंग चर्ट की आयू लगभग 82 करोड़ साल बताई जाती है। बिटर स्प्रिंग में इस बात के प्रमाण मिले हैं कि कोई एक कोशीय जीव लैंगिक प्रजनन (सेक्सुअल रिप्रोडक्शन) से अपनी संख्या बढ़ाने में सक्षम हो गया था। यहां मेरा आशय यह नहीं है कि एक कोशीय जीवों ने इस क्षमता को 82 करोड़ साल पहले ही हासिल किया है। एक कोशीय जीवों में इस तरह की क्षमता पहले ही विकसित हुई होगी लेकिन अभी हमारे पास लैंगिक प्रजनन के इससे भी पुराने जीवाश्मीय सबूत नहीं हैं।

फॉसिल रिकार्ड में है खाली स्थान

ऊपर दिए गए वर्णन से एक ऐसी छवि बनती है कि फिगट्री चट्टानों में जीवन के जो अवशेष मिलते हैं उस
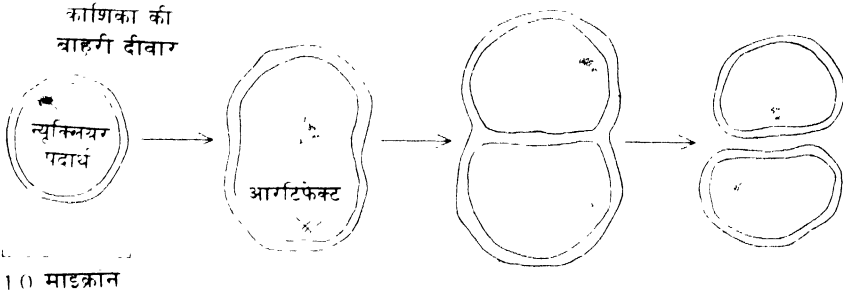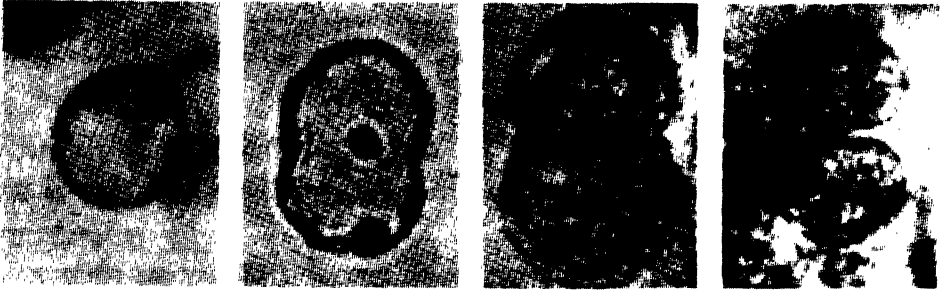
बिटर स्प्रिंग के जीवाश्म: वे एक कोशीय जीव जिनकी कोशिका में माइटोकांड्रिया जैसी संरचनाएं मौजूद थीं। बिटर स्प्रिंग में चर्ट की परतों में जे. विलियम स्कूप ने एक ग्रीन एलगी की विभिन्न स्थितियों को खोज निकाला जिसकी मदद से कोशिका विभाजन का एक क्रम सामने आ सका है। ऊपर कोशिका विभाजन संबंधी माइक्रोफोटोग्राफ हैं और नीचे उन्हीं को रेखाचित्र द्वारा दिखाने की कोशिश की गई है।

स्केल: माइक्रॉन यानी एक मिलीमीटर का एक हज़ारवां हिस्सा।

जीवन के बारे में हमारी जानकारी सीमित है। फिर गन फ्लिंट में जीवन के जो लक्षण दिखते हैं उनसे पता चलता है कि प्रकाशसंश्लेषण जैसी क्रियाएं शुरू हो गई थीं। बिटर स्प्रिंग से एडियाकरा – कैम्ब्रियन युग में एक कोशीय जीवन तेज़ी से जटिल बहुकोशीय जीवों-वनस्पतियों में तब्दील होता हुआ दिखता है।

एडियाकरा की बात हम पहले ही कर चुके हैं। तो कुल मिलाकर 82 करोड़ साल पुराने बिटर स्प्रिंग के एक कोशीय जीव इतनी जल्दी, मात्र 14 करोड़ सालों में किस तरह बहुकोशीय जीव में तब्दील हो गए यह समझ पाना खासा कठिन काम है।

इस तरह यह बात तो साफतौर पर समझ में आती है कि हमारे पास फॉसिल की मदद से पिछले साढ़े तीन अरब साल का इतिहास उपलब्ध है लेकिन इस रिकॉर्ड में काफी सारे गेप्स हैं जिसका मुख्य कारण है कि हमारे

जैविक विकास और फॉसिल रिकॉर्ड में खाली स्थान

वर्तमान 1999	ट्राइलोबाइट... मछली ..... वनस्पतियां.... डायनोसॉर..... से लेकर इंसान तक सभी बहुकोशीय इसी दौर में धरती पर आए।
60 करोड़ साल	तीव्र जैविक विकास शुरू *(कैम्ब्रियन युग की शुरुआत)*
68 करोड़ साल	एडियाकरा के जीवाश्म (बहुकोशीय जीव)
82 करोड़ साल	बिटर स्प्रिंग के एक कोशीय जीवाश्म (लैंगिक प्रजनन) यूकेरयोटिक कोशिका (केन्द्रक, माइटोकांड्रिया..... सहित वाले जीव)
लगभग 2 अरब साल	गनफ्लिंट के जीवाश्म और दूसरे ब्लू-ग्रीन एलगी। प्रकाश संश्लेषण की शुरुआत। प्रोकेरयोटिक सेल (बिना केन्द्रक, माइटोकांड्रिया) स्ट्रोमेटोलाइट।
3.2 अरब साल	फिगट्री जीवाश्म (संभवत: प्रकाश संश्लेषण करते थे) एक कोशीय ब्लू-ग्रीन एलगी।
3.5 अरब साल	अपेक्स चर्ट जीवाश्म (साइनोबैक्टिरिया समूह के)
लगभग 4 अरब साल	शुरुआती वायुमंडल का रासायनिक विकास।
लगभग 4.5 अरब साल	पृथ्वी अस्तित्व में आई।

प्रीकैम्ब्रियन युग (68 करोड़ साल से लगभग 4.5 अरब साल)

धरती पर जीवन का विकास

जीवन के विकास को लेकर भूवैज्ञानिकों, जीववैज्ञानिकों, विकासवादियों के अलग-अलग मत हैं। फिर भी ऐसा माना जाता है कि:

– लगभग 4.5 अरब साल पहले पृथ्वी अस्तित्व में आई। तब उसकी सतह काफी गरम थी जो धीरे-धीरे ठंडी हुई। धरती पर जीवन के रूप में अस्तित्व में आए पानी में रहने वाले एक कोशीय जीव। (बैक्टिरिया आदि) जो सरल कोशिका से बने थे, जिसमे केन्द्रक अनुपस्थित था। इन्हें प्रोकेरयोटिक सेल कहा गया।

– इसके बाद कैल्शियम कार्बोनेट से बनी स्ट्रोमेटोलाइट की परतें मिलती हैं। स्ट्रोमेटोलाइट

पास पृथ्वी पर जीवन के विकास के सारे घटनाक्रम फॉसिल के रूप में मौजूद नहीं हैं। इसलिए बिल्कुल पक्के तौर पर यह बता पाना काफी कठिन हो गया है कि ठीक किस समय पृथ्वी पर एक कोशीय जीव आए, या एक सरल कोशिका (Prokaryotic Cell) में विकास होकर ठीक किस समय उसमें माइटोकांड्रिया या क्लोरोप्लास्ट बने। ले देकर हमारे पास बतौर सबूत अपेक्स चर्ट, फिगट्री, गनफ्लिंट, जैसे उदाहरण हैं लेकिन इनके भी बीच में करोड़ों साल का फासला है। इस बीच के समय में धरती पर जीवन के विकास में क्या हुआ यह अभी भी पक्के तौर पर बता पाना कठिन है। इसी तरह गनफ्लिंट से एडियाकरा के बीच और क्या-क्या घटित हुआ बता पाना अभी संभव नहीं है। यानी अभी और खोजबीन करनी होगी तभी फॉसिल रिकॉर्ड के गेप्स को पाटा जा सकेगा।

एक बार फिर प्रो. बोस की खोज पर आते हैं। मेरे ख्याल से प्रो. बोस की खोज को फॉसिल रिकॉर्ड के खालीस्थान को पाटने की एक कोशिश मानना चाहिए। अभी भी आधुनिक ब_कोशीय जीवन की शुरुआत का एकमात्र सबूत एडियाकरा जीवाश्मों पर ही टिका हुआ है। आज जबकि काफी सारे विकासवादी, वैज्ञानिक पक्केतौर पर यह मानते हैं कि बहुकोशीय जीवन की शुरुआत शायद और भी पहले हुई होगी लेकिन फिलहाल हमारे पास कोई सबूत नहीं है। बोस की खोज इस बात का सबूत बन सकती है यदि यह खोज वैज्ञानिकों द्वारा तय की गई कसौटियों पर खरी उतरती है। यदि ऐसा होता है तो हमें बहुकोशीय जीवन की शुरुआत को 110 करोड़ साल पर ले जाने का

समुद्री ब्लू-ग्रीन एलगी और बैक्टिरिया द्वारा उत्सर्जित कैल्शियम कार्बोनेट से बनता है। विकास के इस दौर में बिना ऑक्सीजन के भी ज़िंदा रह सकने वाले जीव प्रमुखता से उपस्थित थे।

– इसके बाद उन ब्लू-ग्रीन एलगी का नंबर आता है जो आजकल के पौधों की तरह प्रकाश संश्लेषण कर ऑक्सीजन दे सकते थे। इस तरह धरती के वायुमंडल में धीरे-धीरे ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ने लगी।
– विकास की अगली पायदान पर वो एक कोशीय जीव खड़े थे जिनकी कोशिकाओं में केन्द्रक, माइटोकांड्रिया, क्लोरोप्लास्ट जैसी संरचनाएं थीं। और जो जनन करने में भी सक्षम थे।
– एडियाकरा के बहुकोशीय जीव स्पंज, जैली फिश वगैरह से मेल खाते जीव थे।
– बहुकोशीय जीवों के विकास में अगली क्रांति कैम्ब्रियन समय में हुई जब मोलस्का, आर्थोपोड़ा, जैसे समूह के जीव तेज़ी से पनपने लगे।
– धीरे-धीरे एम्फीबियन, कीट, कोनिफर वनस्पतियां, रेप्टाइल, पक्षी, स्तनधारी इस धरती पर अवतरित हुए।

चित्र: आउटलुक अक्टूबर ९८

प्रो. पी. के. बोस द्वारा चुरहट के पास खोजे गए 110 करोड़ साल पुराने बहुकोशीय जीव की बलुआ पत्थर पर दिख रही छाप का एक चित्र।
इस जलीय जीव के बारे में ऐसा माना जाता है कि यह तल में सुरंग बनाकर उसमें रहता था।

मौका मिलेगा। यानी हम कह सकते हैं कि धरती पर बहुकोशीय जीवन की शुरुआत लगभग 110 करोड़ साल पहले हो चुकी थी।

यहां इस बात को तो मानकर चलना होगा कि अभी भी हम प्रीकैम्ब्रियन जीवन के बारे में काफी कम जानते हैं और इस कमतर जानकारी को पूरा करने का एक ही तरीका है कि खोज के काम को लगातार जारी रखा जाए और इसी खोजबीन में पी. के. बोस जैसे और भी कई लोग जुटे हुए हैं।

माधव केलकर: संदर्भ में कार्यरत हैं और उन्होंने भूगर्भ शास्त्र में अध्ययन किया है।

.कितनी बढी त्रिज्या.

पिछले अंक में पूछा गया सवाल: मान लीजिए कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर जिस कक्षा में घूमती है वह एकदम गोलाकार है, और उसकी त्रिज्या एक करोड़ बावन लाख करोड़ किलोमीटर है। अगर हम इस कक्षा की त्रिज्या एक मीटर बढ़ा दें तो उसकी परिधि में कितनी वृद्धि होगी?

इस सवाल को हल करने की एक शर्त थी। कि पहले आपको अंदाज़ लगाकर दस सेकेंड में इसका जवाब देने की कोशिश करनी थी। इसके बाद ही कागज़ पेंसिल उठाना था।

लोगों ने ऐसा ही किया. . . लेकिन चूक कहां की बताना मुश्किल है। और जो जवाब मिले उसमें से सही सिर्फ दो थे। इन्हें भेजा था – धरमचंद साहू इकलेहरा, परासिया और बालकिशन, अध्यापक, भिवानी, हरियाणा ने।

इस सवाल का हल सिर्फ इतना था:

वृत की परिधि (यदि त्रिज्या r हो तो) = $2\pi r$

यदि त्रिज्या में एक मीटर की वृद्धि हो जाए तो नई त्रिज्या होगी = $r+1$

तो ऐसे वृत की परिधि होगी = $2\pi (r+1)$

$$= 2\pi r + 2\pi$$

मतलब कि ऐसे वृत की परिधि r त्रिज्या वाले वृत की तुलना में केवल 2π बढ़ेगी। और यह बात सिर्फ इस वृत के लिए ही सही नहीं है बल्कि किसी भी त्रिज्या वाले वृत के लिए सही है। अगर आप उसकी त्रिज्या में एक मीटर की बढ़ोतरी करेंगे तो उसकी परिधि सिर्फ 2π मीटर ही बढ़ेगी। अगर सूर्य से सबसे दूर स्थित प्लूटो ग्रह के कक्ष की त्रिज्या एक मीटर बढ़ा दी जाए तो उसके कक्ष की परिधि में भी केवल 6.28 मीटर की बढ़ोतरी होगी। (यहां हम ये ज़रूर मानकर चल रहे हैं कि ये सब कक्ष वृताकार हैं।)

नया सवाल पृष्ठ 42 पर।
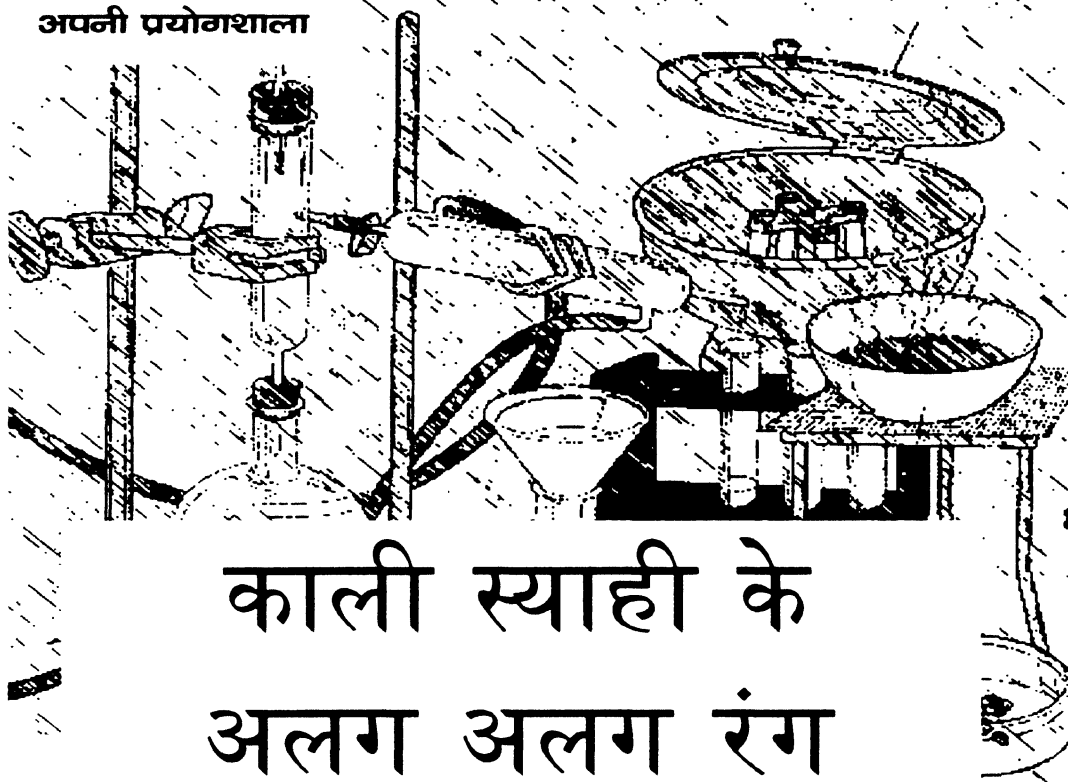
काली स्याही के अलग अलग रंग

ए. दास

आप क्रोमेटोग्राफी की विधि से परिचित तो होंगे ही। इस विधि के सहारे आप मिश्रण में से पदार्थों को अलग-अलग कर सकते हैं। आपने चॉक के निचले हिस्से पर काली स्याही की बूंद लगाकर उस पर पानी को चढ़ाया होगा (देखिए बॉक्स)। इस तरीके से कुछ देर बाद आपको चॉक पर अलग-अलग ऊंचाई पर विभिन्न रंगों के छल्ले बने दिखते हैं। लेकिन इस प्रयोग में बात यहीं पर आकर रुक जाती है। इससे यह तो पता चल जाता है कि काली स्याही कितने रंगों से मिलकर बनी है, लेकिन अगर इन रंगों को अलग-अलग शुद्ध रूप में प्राप्त करना हो तो क्या करें?

क्रोमेटोग्राफी विधि का एक उद्देश्य तो यह पता करना है कि मिश्रण में कौन-कौन से पदार्थ हैं और दूसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य है – मिश्रण में

स्तंभ क्रोमेटोग्राफी चॉक से

सामग्री: सफेद चॉक, रंगबिरंगी स्याहियां, पानी, किसी डिब्बे का गहरा ढक्कन या ऐसा कोई बर्तन (जैसे प्लेट)।

कैसे करें: दो-तीन रंगों की स्याहियों की थोड़ी-थोड़ी मात्रा लेकर आपस में मिला दीजिए। ये हो गया हमारा मिश्रण। स्केच पेन की काली स्याही लेने से भी काम चल जाएगा।

अब एक चॉक लीजिए – ऐसा जो सीधा खड़ा रह सके। इस चॉक के मोटे सिरे से लगभग एक सेंटीमीटर छोड़कर बनाए हुए मिश्रण का एक छल्ला बना दीजिए। छल्ला बनाने के लिए माचिस की तीली, ऑलपिन या रीफिल से काम चल जाएगा। छल्ले की मोटाई जितनी कम होगी उतना ही अच्छा रहेगा।

अब लिए हुए ढक्कन या प्लेट में थोड़ा-सा पानी डाल दीजिए और छल्ले की तरफ से चॉक को उसमें खड़ा कर दीजिए। पानी बस इतना हो कि छल्ला उसमें डूबने न पाए। पानी की सतह चॉक पर बनाए छल्ले से नीचे ही रहनी चाहिए।

अब आप देखेंगे कि पानी धीरे-धीरे ऊपर चढ़ रहा है। वह छल्ले को भी पार कर जाएगा और लगभग दूसरे सिरे तक पहुंच जाएगा। अब चॉक को बाहर निकाल लीजिए और सुखा कर उसका अवलोकन कीजिए। क्या स्याहियां अलग-अलग नज़र आ रही हैं?

चित्र: स्याही के मिश्रण का एक छल्ला चॉक पर बनाकर उसे किसी पानी से भरे ढक्कन या प्लेट में खड़ा करना है। ध्यान रहे कि चॉक पर बना छल्ला पानी में डूबना नहीं चाहिए।
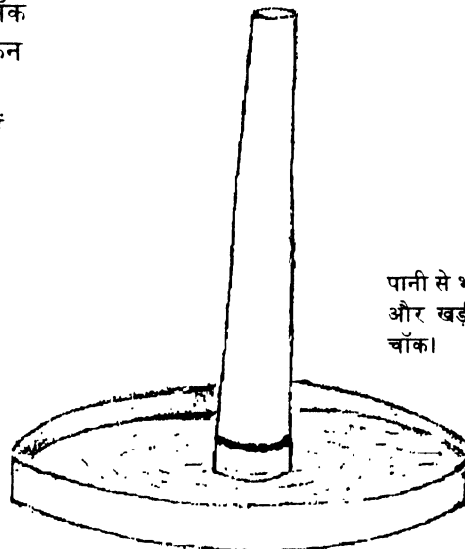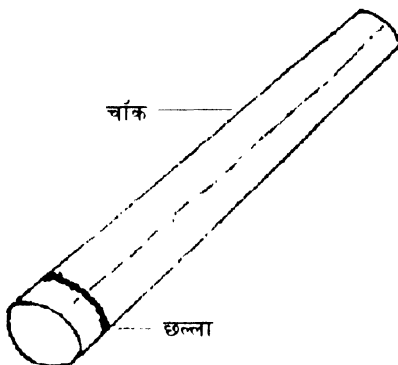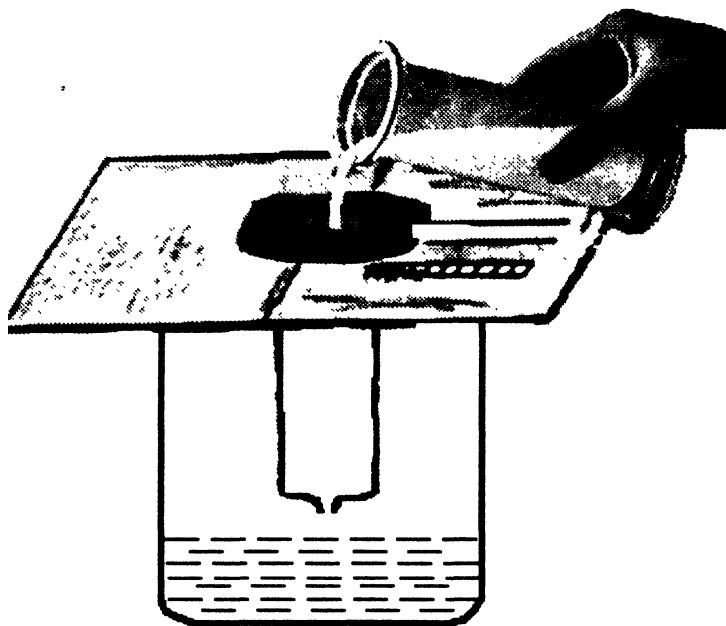
चित्र-1 : बनाइए कॉलम: चाक के चूरे को पीस कर पानी में घोल लीजिए। इस घोल को हिलाते हुए सीरिंज में भरते रहिए। पानी नीचे से रिसता रहेगा। इस तरह चॉक का चूरा सीरिंज में भर जाएगा और प्रयोग के लिए आपका कॉलम तैयार हो जाएगा।

मिले हुए अलग-अलग पदार्थ को शुद्ध रूप में प्राप्त करना।

कुछ दिन पहले इसी समस्या से उलझते हुए मैंने काली स्याही में मिले हुए अलग-अलग रंगो को शुद्ध रूप में अलग-अलग प्राप्त करने का एक रोचक और अत्यंत सरल तरीका हासिल किया। यहां मैं वही तरीका बताने जा रहा हूं। इसे आप खुद आज़मा कर देख सकते हैं।

प्रयोग के लिए आपको इन चीज़ों की ज़रूरत होगी।

1. एक 5 मि. ली. की डिस्पोज़ेबल सीरिंज
2. चॉक का बारीक चूरा (इसके लिए आप चॉक को पीसकर पतले कपड़े से छान लीजिए)
3. कुछ उफननली या कांच के गिलास
4. मिश्रण (स्केच पेन की काली स्याही)
5. तरल पदार्थ (पानी)
6. रुई
7. पोस्टकार्ड

विधि: सीरिंज से किया जाने वाला यह प्रयोग रसायन शास्त्र में अत्यंत प्रचलित कॉलम (स्तम्भ) क्रोमेटोग्राफी का ही एक प्रकार है।

प्रयोग करने के लिए पहले आप सीरिंज में लगी हुई सुई को निकाल दें और थोड़ी-सी रुई सीरिंज में डाल कर रुई को नीचे की तरफ दबा दें।
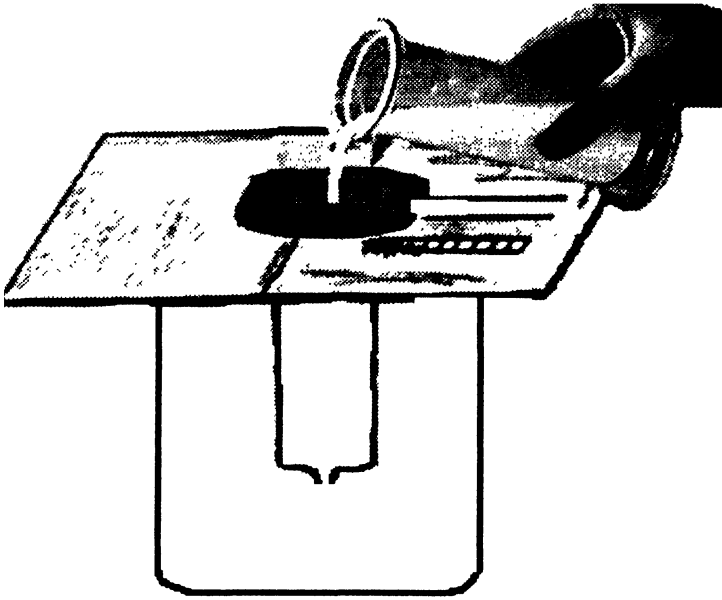
चित्र 2 : कॉलम पर दिख रहे अलग-अलग रंग के छल्लों से रंग अलग करने के लिए कॉलम में ऊपर से धीरे-धीरे पानी डालिए। नीचे रखे बीकर में सबसे पहले वह रंग बाहर निकलेगा जो सबसे नीचे है। ध्यान रखिए कि जैसे ही एक रंग खत्म हो आपको दूसरा रंग मिलना शुरू हो जाएगा। इसलिए दूसरी परखनली या गिलास आदि तैयार रखें, अलग रंग इकट्ठा करने के लिए।

इस रुई को पानी से गीला कर लें।

अब दो या तीन चॉक पीसकर उनका चूरा बना लीजिए और एक पतले कपड़े से उसे अच्छे से छान लीजिए ताकि आपको बारीक चूरा मिल जाए।

इसके बाद आधा बीकर पानी लेकर चॉक के चूरे को उसमें डालकर अच्छी तरह से मिलाइए और थोड़ी देर के लिए छोड़ दीजिए। अब इस मिश्रण को सीरिंज में भर लीजिए। मिश्रण को सीरिंज में भरते हुए बार-बार हिलाना ज़रूरी है क्योंकि चॉक बीकर में हमेशा नीचे बैठ जाता है। जैसे-जैसे आप सीरिंज में मिश्रण डालते जाएंगे सीरिंज चॉक से भरता जाएगा और पानी रिसकर निकलता जाएगा। चॉक के चूरे के बाहर निकलने की तो कोई गुंजाइश नहीं है क्योंकि आपने रुई जो डाल रखी है।

उसके बाद चित्र-1 अनुसार सीरिंज को लटकाकर उसमें से पानी रिस जाने दें। मगर ऐसा न हो कि चॉक के चूरे से बना कॉलम सूखकर फट ही जाए। आपके कॉलम की लम्बाई सीरिंज के लगभग तीन चौथाई हिस्से तक होनी चाहिए। अब इस कॉलम में स्केच पेन की काली स्याही की दस बूंद ड्रॉपर से डालिए और उसे चित्र-1 जैसी स्थिति में लटका रहने दीजिए।

लगभग एक घंटे बाद आपको अलग-अलग रंगों के नज़ारे दिखेंगे।

सबसे पहले आपको मोटे-मोटे रूप में तीन रंग दिखेंगे। पहले नीले रंग का मोटा छल्ला, उसके बाद लाल और सबसे नीचे पीला। लेकिन आप जब सीरिंज में ऊपर से पानी डालकर रंगों के छल्ले को सीरिंज के नीचे की तरफ लाएंगे तो आपको और भी किस्म-किस्म के रंग दिखेंगे। यानी कॉलम पर सबसे नीचे पीला फिर गुलाबी, फिर लाल, फिर हल्का बैंगनी और सबसे ऊपर नीला। नीले के ठीक नीचे बैंगनी रंग देख पाना थोड़ा मुश्किल हो सकता है – आपको लग सकता है कि नीले रंग के छल्ले के नीचे का स्थान खाली है, परंतु उसे गौर से देखिए।

पीला रंग इस कॉलम में सबसे नीचे इसलिए दिखता है क्योंकि चॉक के चूरे के प्रति उसका आकर्षण सबसे कम है, इसी क्रम में नीला रंग कॉलम के ऊपर इसलिए दिखता है क्योंकि चॉक के चूरे के प्रति उसका आकर्षण सबसे अधिक है।

आइए अब अपने प्रयोग के दूसरे हिस्से की तरफ चलते हैं जिसमें हमें इन विभक्त हुए रंगों को इकट्ठा करना है। इसके लिए सीरिंज को चित्र-2 के अनुसार सेट कर लें और इसके नीचे बीकर या कांच की परखनली रख लें।

अब आपको कॉलम के ऊपर से थोड़ा-थोड़ा करके पानी डालना है। जिस क्रम में कॉलम पर रंगों के छल्ले बने थे उसी क्रम में आपको ये रंग भी मिलेंगे। सबसे पहले नीचे वाला रंग रिसकर बाहर निकलेगा। ध्यान रखें कि इस रंग का छल्ला जैसे ही खत्म हो आप सीरिंज को दूसरे बीकर या गिलास पर सेट करके दूसरा रंग इकट्ठा कर लें। इसी तरह आप सभी रंग इकट्ठा कर सकते हैं। याद रखिएगा आपका कॉलम प्रयोग के दौरान कभी भी सूखना नहीं चाहिए। कुछ-कुछ देर से थोड़ा-थोड़ा पानी डालते जाइए। शुद्ध रूप में स्याही के पांच रंग अलग-अलग प्राप्त करने में आपको लगभग एक पूरा दिन लगेगा। ये पांच रंग आपको अलग-अलग आयतन में मिलेंगे – सबसे ज़्यादा नीला एवं सबसे कम पीला रंग मिलेगा। इसके बाद आप एक मज़ेदार काम कर सकते हैं। अलग-अलग स्याही को उनके आयतन के अनुपात के अनुसार थोड़ा-थोड़ा मिला सकते हैं। आपको अपनी उम्मीद के अनुसार हल्की काली स्याही ही मिलेगी।

जब सारे रंग अलग हो जाएं तो कॉलम को फेंकिएगा मत। यह किसी और मिश्रण में से उसके घटकों को अलग करने के लिए इस्तेमाल हो सकता है। अर्थात इस विधि से आप कई बार अपने कॉलम को इस्तेमाल कर सकते हैं। सिर्फ यही कि नया मिश्रण लेने से पूर्व पानी से कॉलम को अच्छी तरह धो लेना ज़रूरी होगा। इसके लिए कॉलम में दो-चार बार ऊपर से पानी

डालकर उसे रिस जाने दें।

सीरिंज के इस कॉलम से आप पत्तियों के रस (extract) में से रंगों को भी अलग-अलग प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए आपको पत्तियों को एल्कोहॉल में उबालकर रस तैयार करना होगा; और चॉक के कॉलम के ऊपर इस रस की 20 बूंद डालनी होंगी। अलग-अलग रंग के छल्ले दिखने के पश्चात कॉलम के ऊपर एल्कोहॉल डालना होगा। इस तरह आप पत्तियों के विभिन्न रंग भी अलग-अलग प्राप्त कर सकते हैं।

चॉक या छन्ना कागज़ पर की जाने वाली क्रोमेटोग्राफी में आपको काली स्याही से उतने रंग नहीं दिखते जितने कि सीरिंज की इस विधि में दिखते हैं। सीरिंज द्वारा प्रयोग में आप और अधिक मोटाई या लम्बाई की सीरिंज लेकर और अधिक मोटा या लम्बा कॉलम बना सकते हैं। और हो सकता है आपको रंगो के छल्ले और भी अच्छे से दिखें, या आपको किसी और नए रंग के छल्ले दिखें।

चॉक और कागज़ के प्रयोगों की तुलना में इस प्रयोग का फायदा यह है कि चॉक या कागज़ में से मिश्रण के घटक अलग-अलग प्राप्त करने के लिए उन्हें तोड़कर या फाड़कर घोलना पड़ता है जिससे कि उनका दोबारा इस्तेमाल नहीं हो सकता। दूसरा कई बार चॉक पर स्याही तिरछी चढ़ जाती है तो उसे तोड़कर निकालना मुश्किल पड़ता है। जबकि इस विधि में आपको कॉलम तोड़ना नहीं पड़ता।

ए. दास: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध।

चन्द्रमा -1

संदर्भ के पिछले अंक में अरविंद गुप्ते के इसी लेख के ज़रिए चन्द्रमा से संबंधित कुछ सवाल पूछे गए थे। हमारा आकलन था कि चूंकि चांद आकाश में एक प्रभावशाली पिंड है और लोगों की ज़िंदगी से इतना जुड़ा हुआ है, इन प्रश्नों के बारे में काफी लोग लिखेंगे। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। इसलिए एक और प्रयास कर रहे हैं, फिर से वही प्रश्न दोहरा कर – यह मानते हुए कि अंत की तरफ होने की वजह से शायद पिछली बार इस लेख पर आपकी नज़र ही न पड़ी हो।

सही जवाब देने वालों को टेलिस्कोप निर्माण कार्यशाला में भाग लेने का निमंत्रण होगा – उनकी समस्त व्यवस्था 'संदर्भ' द्वारा की जाएगी। अन्य रुचिकर व तकरीबन सही जवाबों के लिए आकाश दर्शन से संबधित पुस्तकें उपलब्ध करवाई जाएंगी। आपके सही जवाब हमें 1 जनवरी तक मिल जाने चाहिए।

सवाल:

1. अमावस्या के दिन चंद्रमा बिलकुल दिखाई नहीं देता है। वह कहां चला जाता है?
2. चित्र-1 में एक गलती है। बताइए चित्रकार ने क्या गलती की है।

चित्र:1

3. चित्र-2 में क्या गलती है?

चित्र:2

कृष्ण पक्ष *चित्र:3*

4. चित्र-3 एक पाठ्यपुस्तक से लिया गया है। इसमें कई त्रुटियां हैं। इन त्रुटियों को पहचानिए।
5. भूमध्य रेखा पर कभी-कभी चंद्रमा की कला ऐसी दिखाई पड़ती है जैसी चित्र-4 में दिखाई गई है।
   – यह भारत में कैसी दिखाई देती है? क्यों?
   – ध्रुवों पर यह कैसी दिखाई देगी? क्यों?

अरविंद गुप्ते: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध; इंदौर में रहते हैं। पूर्व में वे प्राणीशास्त्र के प्राध्यापक रह चुके हैं।
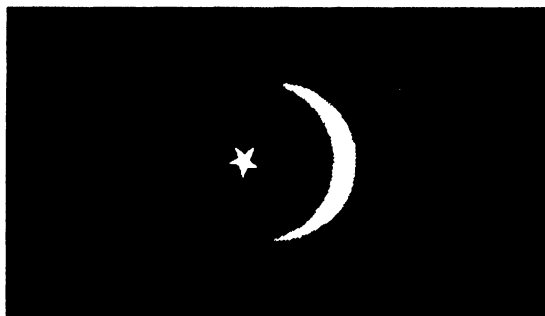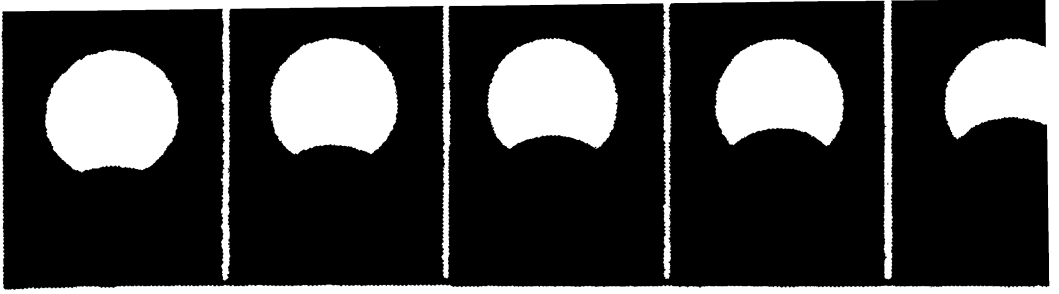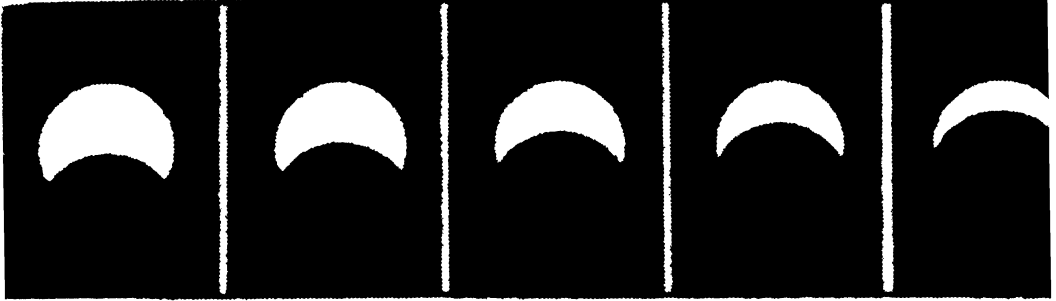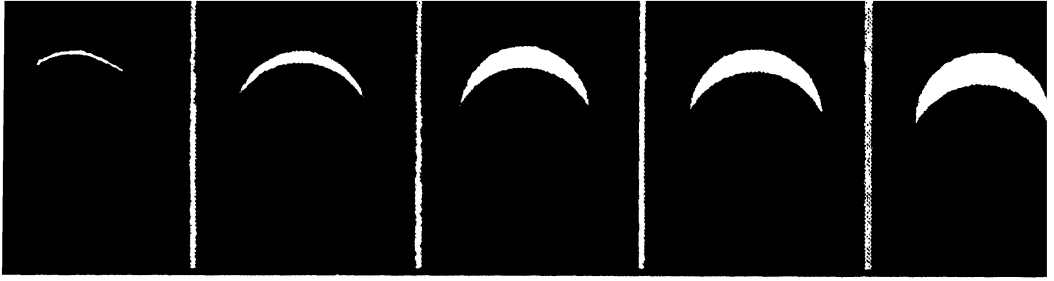
प्रतिपदा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी
षष्ठी	सप्तमी	अष्टमी	नवमी	दशमी
एकादशी	द्वादशी	त्रयोदशी	चतुर्दशी	पूर्णिमा
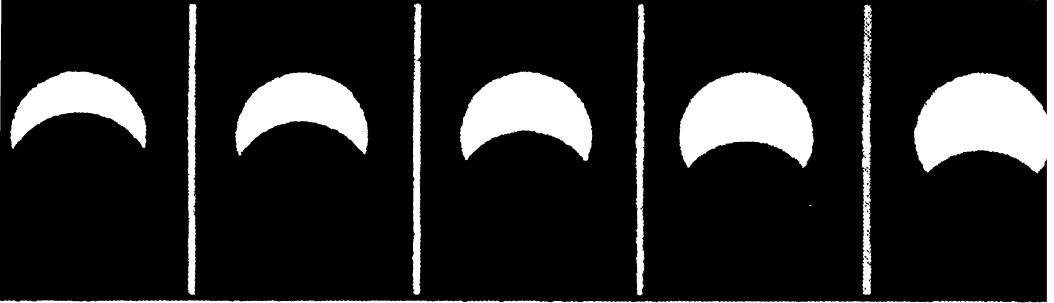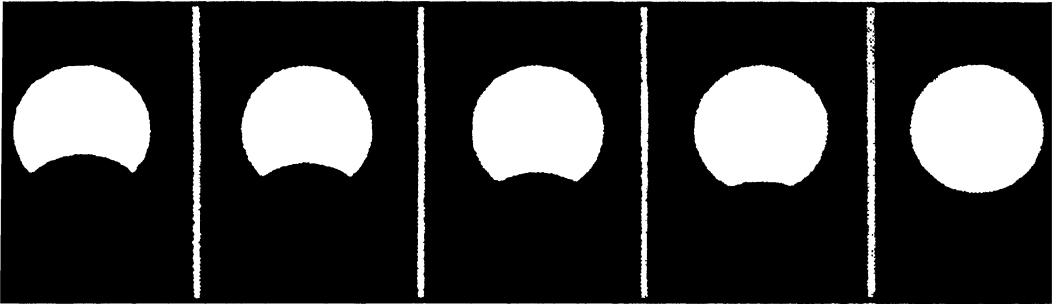
शुक्ल पक्ष

चित्र:1
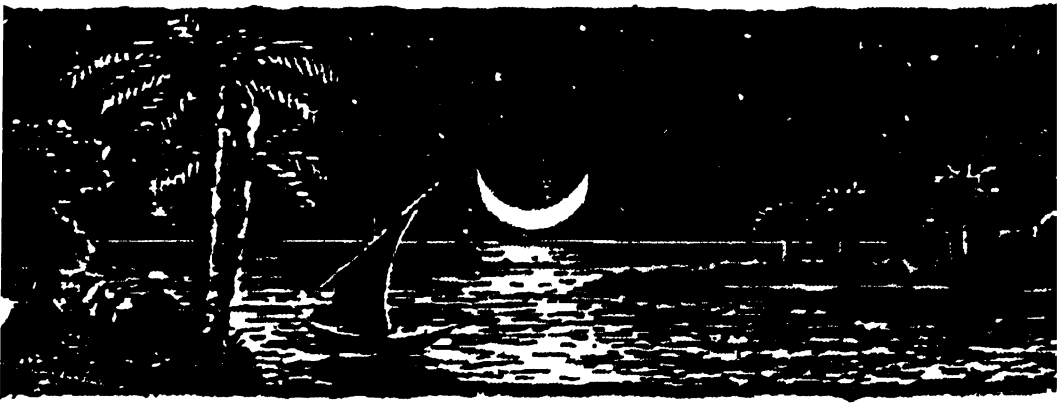
आधा है चद्रमा. . .

मंदर्भ के पिछले अंकों में हमने चांद से संबंधित कुछ सवाल आपसे पूछे थे। उनमें से कुछ के सही जवाब कुछ पाठकों ने भेजे हैं। जवाबों को थोड़ा विस्तार से यहां दे रहे हैं।

अरविंद गुप्ते

सवाल 1: अमावस्या के दिन चंद्रमा कहीं नहीं जाता, वो उस दिन बिलकुल उसी जगह पर रहता है जहां कि सूर्य है – सूरज के उगने के साथ ही उगता है, और उसी के साथ दिनभर चलता है और शाम को डूब जाता है। दरअसल चंद्रमा हमारी पृथ्वी के समान सूर्य के प्रकाश से चमकता है। अमावस्या के दिन उसकी स्थिति ऐसी होती है कि उसका प्रकाशित हिस्सा सूर्य की तरफ ही होता है – हमारी तरफ होता है उसका अंधेरे में डूबा हुआ हिस्सा। इसलिए हम उसे नहीं देख पाते जबकि वो है हमारी आंखों के सामने ही।

ऐसे में सवाल उठेगा कि जिस स्थिति की हम बात कर रहे हैं वो आखिर है क्या? इसे यहां साफ करना ज़रूरी है क्योंकि तीसरे सवाल को समझने के लिए हमें इन बातों की ज़रूरत पड़ेगी।

कुछ बातें तो आपने गौर की ही होंगी – कि चंद्रमा कभी दिन में दिखाई देता है तो कभी रात में; जैसे पूर्णिमा के दिन वो सूर्यास्त के समय उगता है और सुबह सूर्योदय के समय डूब जाता है; उसका आकार भी बदलता रहता है जैसे पूर्णिमा के दिन चंद्रमा पूरा गोल थाली के समान चमकता है, इसके बाद उसका आकार घटना शुरू होता है, एक पखवाड़े बाद यानी अमावस्या को वो पूरी तरह लुप्त हो जाता है। अगले दिन से फिर चंद्रमा पतली-सी कला के रूप में दिखता है जो प्रतिदिन बढ़ती जाती है, और एक पखवाड़े बाद बढ़कर थाली के समान पूरी तरह गोल चकती में बदल जाती है।

तालिका

दिनांक	तिथि	चंद्रोदय का समय	सूर्योदय का समय
4-11-98	पूर्णिमा	17:49	
5-11-98	प्रतिपदा/द्वितीया	18:43	6:03
6-11-98	तृतीया	19:38	
7-11-98	चतुर्थी	20:36	
8-11-98	पंचमी	21:34	
9-11-98	षष्ठी	22:32	
10-11-98	सप्तमी	23:27	
11-11-98	अष्टमी	——	6:06
12-11-98	नवमी	0:20	
13-11-98	दशमी	1:12	
14-11-98	एकादशी	2:01	
15-11-98	द्वादशी	2:50	
16-11-98	त्रयोदशी	3:58	
17-11-98	चतुर्दशी	4:26	
18-11-98	चतुर्दशी	5:15	
19-11-98	अमावस्या	6:04	6:11
20-11-98	प्रतिपदा	6:54	
21-11-98	द्वितीया	7:45	
22-11-98	तृतीया	8:35	
23-11-98	चतुर्थी	9:25	
24-11-98	पंचमी	10:14	
25-11-98	षष्ठी	11:01	
26-11-98	सप्तमी	11:47	6:15
27-11-98	अष्टमी	12:32	
28-11-98	नवमी	13:16	
29-11-98	दशमी	14:00	
30-11-98	एकादशी	14:40	
1-12-98	द्वादशी/त्रयोदशी	15:34	
2-12-98	चतुर्दशी	16:25	
3-12-98	पूर्णिमा	17:19	6:20

यह तालिका पिछले नवंबर और दिसंबर मास के चंद्रोदय और सूर्योदय के समय को दिखा रही है।

चंद्रोदय और चंद्रास्त

ज़रा इस तालिका पर गौर कीजिए। इसमें एक पूरे महीने के दौरान चंद्रमा के उदय का समय और उसके अस्त होने का समय दिखाया गया है। साथ ही सूर्य के उदय होने का समय भी दिखाया गया है।

तालिका से पता चलता है कि चंद्रमा प्रतिदिन पिछले दिन की तुलना में औसतन 50 मिनट देरी से उगता है। जैसे कि अमावस्या के दिन चंद्रमा और सूर्य करीबन एक ही समय पर उगते हैं – जैसे कि चंद्रमा सुबह 6.04 बजे और सूर्य 6.11 बजे। इसके अगले दिन चंद्रमा 6.54 बजे उगता है। इस तरह सूर्योदय और चंद्रोदय के बीच का फासला बढ़ता जाता है और पूर्णिमा को यह लगभग 12 घंटे हो जाता है – यानी चंद्रमा शाम को 5.49 बजे उग रहा है जो सूरज के डूबने का समय है। और सुबह 6.20 पर जब सूरज उग रहा है तो चंद्रमा डूब चुका है।

कभी आधा तो कभी पूरा चांद

ज़रा *चित्र-1* पर गौर कीजिए। इसमें पृथ्वी चांद और सूर्य की स्थिति दिखाई गई है। मान लीजिए सूर्य का प्रकाश किसी एक विशेष दिशा से आ रहा है। पृथ्वी एक गोल गेंद है जो अपनी धुरी पर घूम रही है। गोल होने की वजह से उसका आधा हिस्सा हमेशा प्रकाशित रहता है और आधा हिस्सा सदैव अंधेरे में। चित्र से यह भी पता चलता है कि पृथ्वी के समान चंद्रमा भी गेंदनुमा है इसलिए उसका भी आधा हिस्सा हमेशा प्रकाशित रहता है और आधा अंधेरे में। जब यह प्रकाशित हिस्सा पूरा का पूरा हमारे सामने होता है तो उस दिन पूर्णिमा की स्थिति बनती है – जिस दिन चांद पूरा का पूरा गोला दिखाई देता है। साथ के चित्र को देखिए तो समझने में मदद मिलेगी। पूर्णिमा के
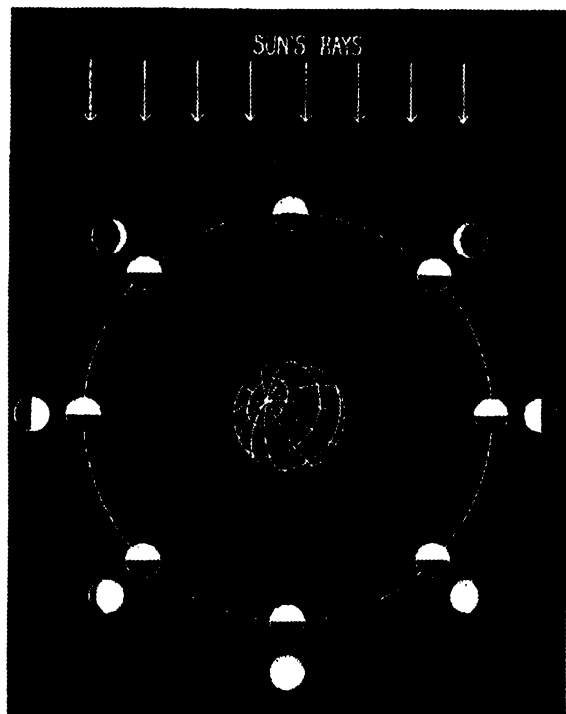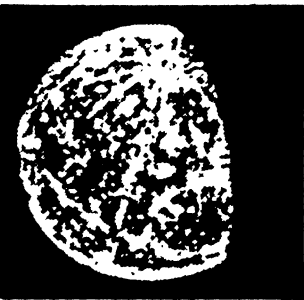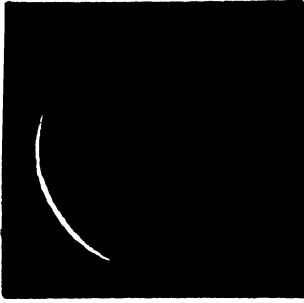
चित्र-1

बाद चांद के घटने का क्रम शुरू होता है जिसे हम कृष्ण पक्ष कहते हैं। इस पक्ष में चांद का गोला क्रमशः घटता जाता है (चित्र देखिए – घटते हुए चांद के चित्र)। यहां एक सवाल उठ सकता है कि जब हम कह रहे हैं कि चांद का आधा हिस्सा हमेशा चमकता रहता है तो क्यूं हमें चांद की थाली कम होती दिख रही है? जैसे कि हमने चित्र-1 में देखा था चांद का आकार गोल होने की वजह से सूर्य के प्रकाश के कारण उसका आधा हिस्सा हमेशा प्रकाशित रहेगा। जब यह पूरा प्रकाशित हिस्सा हमारे सामने है तो हमें पूरा गोला नज़र आता है जबकि इस दिन भी चांद का आधा हिस्सा – जो अंधेरे में डूबा हुआ है – वो इस प्रकाशित हिस्से के पीछे है। अगले दिन जब चांद का गोला थोड़ा सा घट गया है तब भी चांद का पूरा आधा हिस्सा सूर्य के प्रकाश से चमक रहा है, बस हुआ यह है कि इस प्रकाशित आधे हिस्से का थोड़ा-सा हिस्सा हमारी नज़रों के पीछे चला गया है और उसकी जगह अंधेरे
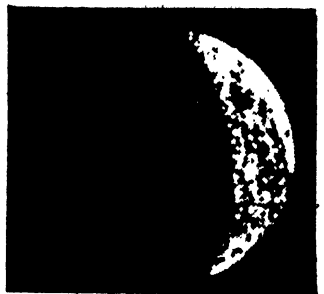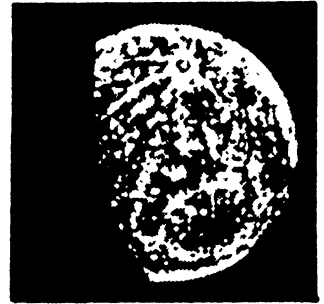
बढ़ते और घटते चंद्रमा के चित्र: 1. अमावस्या, 2. चौथा दिन, 3. सातवां दिन, 4. ग्यारहवां दिन, 5. चौदहवां दिन (पूर्णिमा), 6. अठारहवां दिन, 7. इक्कीसवां दिन, 8. पच्चीसवां दिन।

वाले हिस्से ने ले ली है। मतलब कि सप्तमी के दिन जब आपको चांद के गोले का बिलकुल आधा हिस्सा दिख रहा है तो मतलब यह हुआ कि आधे प्रकाशित हिस्से का भी आधा भाग ही आपके सामने है यानी आप प्रकाशित चौथाई चंद्रमा देख रहे हैं। जबकि वहां चौथाई चंद्रमा और मौजूद है – अंधेरे में डूबे भाग का भी आधा हिस्सा। चंद्रमा की इन स्थितियों को एक अंधेरे कमरे में किसी गोल गेंद पर टॉर्च के प्रकाश की रोशनी डालकर समझा जा सकता है।
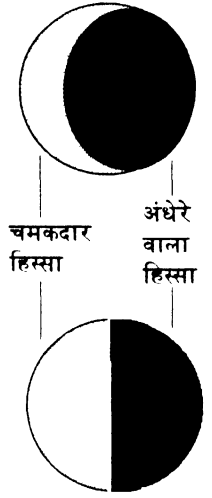
तो कुल मामला इतना है कि चंद्रमा प्रकाशित तो हमेशा ही आधा होता है – या यूं कहें जिस तरह पृथ्वी के आधे हिस्से में दिन रहता है और आधे हिस्से में रात, चांद पर भी ठीक वैसा ही होता है। हम इस दिन वाले हिस्से का कितना भाग देख पाते हैं, चांद हमें आकाश में उतना ही नज़र आता है।

सवाल 2: चूंकि चंद्रमा का प्रकाश सूर्य के कारण है। इसलिए चंद्रमा की प्रकाशित कला का उत्तल भाग हमेशा सूर्य की ओर होगा। सवाल में चित्रकार ने कला का अवतल भाग सूर्य की ओर दिखाया है जो कि संभव नहीं है।

सवाल 3: चंद्रमा के प्रकाशित आधे हिस्से का जितना भाग हमारे सामने होता है हमें उतनी कला आकाश में दिखाई देती है। इस कला के कोनों को मिलाकर आप पूरा गोला बना दीजिए। इसमें चांद का वह हिस्सा भी है जिसपर सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ रहा इसलिए वह हमें दिखाई नहीं दे रहा। चित्र में जो तारा दिखाई दे रहा है वो चांद के इस गोले के भीतर आता है। ऐसी स्थिति में तो चांद इसे ढंक लेगा इसलिए इस स्थिति में कभी भी तारा दिखाई नहीं दे सकता।

सवाल 1: इस चित्र में पहली त्रुटि तो यह है कि चंद्रमा की कला का उत्तल भाग ऊपर की ओर दिखाया गया है जो कि संभव नहीं है। वह या तो दाहिनी ओर झुका होगा (शुक्ल पक्ष) या बाईं ओर (कृष्ण पक्ष)। इस चित्र में दूसरी त्रुटि यह है कि पूर्णिमा से अमावस्या की ओर चंद्रग्रहण के समान स्थितियां दिखाई गई हैं। चंद्रग्रहण के समय पृथ्वी की छाया चंद्रमा पर पड़ती है और वह एक कोने से शुरू हो कर तेज़ी से बढ़ती हुई पूरे चंद्रमा को ढंक लेती है। वास्तव में चंद्रमा की कला का बढ़ना इस प्रकार कभी नहीं होता।

सवाल 5: इस सवाल का विस्तृत जवाब अगले लेख में दिया गया है।

चंद्रमा की कलाएं

विजय शंकर वर्मा

आइए अपनी बात सबसे सरल परिकल्पना से शुरू करते हैं जिसमें पृथ्वी का भूमध्यरेखीय तल (Equatorial Plane), पृथ्वी की कक्षा (जिसमें पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाती है) तथा चंद्रमा का पृथ्वी के गिर्द कक्षीय तल तीनों एक ही तल में हैं।

ऐसी स्थिति में सूर्य पूरे साल भर भूमध्य रेखा पर बिल्कुल सीधा ऊपर होगा और मौसम की जिस विविधता से हम परिचित हैं वो बिलकुल भी नहीं रहेगी। ऐसे में भूमध्य रेखा के किसी भी बिन्दु से चांद और सूर्य एक सीधी कक्षा में पूरब से पश्चिम की ओर जाते दिखेंगे। और चांद की कोर (Crescent) के दोनों किनारे के बिन्दुओं (नोक) को मिलाने पर जो सीधी रेखा मिलेगी – यानी चंद्रमा का अक्ष – वो हमेशा पृथ्वी के घूर्णन अक्ष (Axis of rotation) के समानान्तर रहेगी। इसीलिए चंद्रोदय और चंद्रास्त के समय अगर हम भूमध्य रेखा के किसी बिन्दु से देखें तो यह अक्ष बिल्कुल सीधा दिखेगा यानी कि क्षितिज के समानांतर चांद नाव की तरह लेटा हुआ दिखेगा। (चित्र-1a)

और अगर हम उत्तरी ध्रुव से देखें तो चंद्रमा और सूर्य क्षितिज रेखा के साथ चलते दिखेंगे और वहां से हर समय हमें केवल उनका ऊपरी आधा हिस्सा ही दिखेगा। साथ ही चंद्रमा का अक्ष हमेशा खड़ी स्थिति में रहेगा। (चित्र-1b) इसी तरह पृथ्वी के किसी अन्य हिस्से से देखें जहां का अक्षांश θ है तो यहां चंद्रोदय और चंद्रास्त के समय चंद्रमा का अक्ष क्षितिज से थीटा (θ) कोण बनाएगा (चित्र-1c)।

लेकिन हकीकत में हमारी स्थिति इस कल्पना से भिन्न है। हमारी पृथ्वी का भूमध्यरेखीय तल अपनी घूर्णन कक्षा के सापेक्ष 23.5^0 झुका हुआ है; इतना ही नहीं बल्कि चंद्रमा की कक्षा भी 5^0 झुकी हुई है। इस पूरी स्थिति का कुल परिणाम यह होता है कि साल भर में सिर्फ दो बार ही ऐसी स्थितियां बनती हैं जबकि सूर्य और चांद भूमध्य रेखा के बिलकुल ऊपर होते हैं। और भूमध्यरेखा से देखने पर सूर्य और चंद्रमा के कक्ष भी एक लंबवत तल में नहीं होते। इसलिए चंद्रोदय और चंद्रास्त के समय भूमध्य रेखा के किसी बिन्दु से देखें तो चंद्रमा का अक्ष सदैव क्षितिज के समानांतर नहीं होता, परन्तु 28.5^0 तक झुका हो सकता है (चित्र-2a)। इसी तरह उत्तरी ध्रुव से चंद्रमा का अक्ष एकदम खड़ा या लंबवत न दिखकर इतना ही यानी 28.5^0 तक झुका दिख सकता है (चित्र-2b)। और अगर θ अक्षांश से देखा जाए, तो चंद्रोदय अथवा चंद्रास्त के वक्त चांद का अक्ष $(\theta + 28.5^0)$ या $(\theta - 28.5^0)$ के कोण तक झुका हो सकता है (चित्र-2c)।
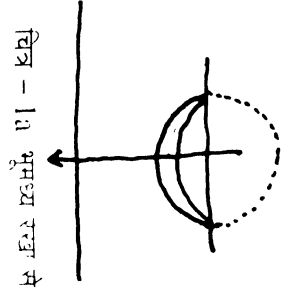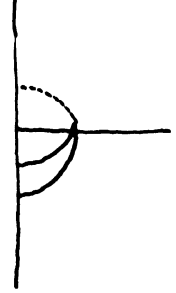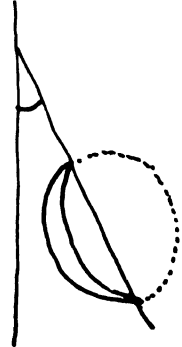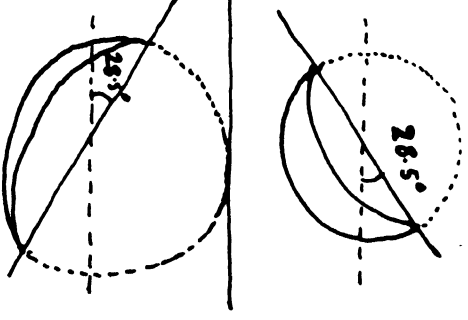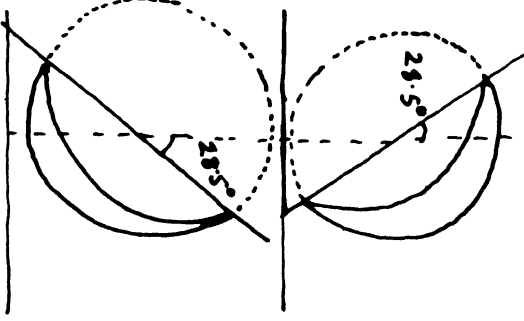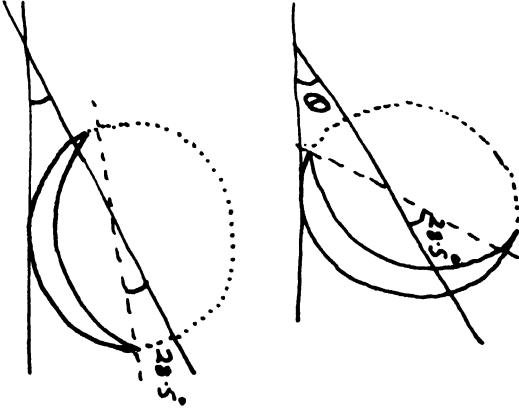
विजय वर्मा: दिल्ली विश्वविद्यालय के भौतिक शास्त्र विभाग में पढ़ाते हैं।

कुछ भूगोल कुछ इतिहास और कालिदास

सी. एन. सुब्रह्मण्यम

पिछले वर्ष राजस्थान के गांवों के अध्ययन का मौका मिला। इस दौरान मैंने खुद को उदयपुर के पास के नवानिया गांव में पाया। यह गांव उस क्षेत्र के अन्य गांवों से खास फर्क नहीं था। उसकी खासियत मात्र इतनी थी कि 30 साल पहले किसी ने उस गांव पर एक बहुत ही खूबसूरत शोध प्रबंध लिखा था। उसको पढ़कर मैं वहां गया था।

गांव के कुछ लोगों ने मुझे गांव में घुमाया और उनकी बस्ती, तालाब और खेत दिखाए। बस्ती के आसपास जो खेत थे, उनमें मिट्टी भूरी थी, खेत छोटे-छोटे थे; उनमें कुंएं खुदे थे, चारों तरफ पेड़ों व झाड़ियों के बाड़े बने थे। ऐसे खेतों से गुज़रकर आगे निकले तो गांव के साथी ने कहा– "ये देखिए यहां से 'माल' शुरू होता है।" यहां नज़ारा ही कुछ और था।

दूर-दूर तक समतल सपाट खेत, इक्के-दुक्के पेड़ों को छोड़कर कोई झाड़-पेड़ नहीं, कोई कुंआं नहीं, ऊंची मेड़ नहीं, बाड़े नहीं। बस एकदम काली मिट्टी। गांववालों ने बताया कि पुराने ज़माने में यही भूमि इस गांव की खेती का आधार थी। इसमें बिना सिंचाई के रबी में गेहूं या चने की फसल ली जाती थी। बरसात में चिकनी काली मिट्टी में कीचड़ मच जाता था सो खेती नहीं हो पाती थी। मगर सर्दियों में इस खेत में गेहूं के लिए नमी बनी रहती थी। इस कारण इस भूमि के चप्पे-चप्पे में खेती होती थी। खेती का काम 'माल' में

सामूहिक होता था। पूरे इलाके में एक साथ गेहूं की बुआई होती थी और एक साथ कटाई शुरू होती थी। कटाई के समय तो यहां मेले जैसा लगता था।

एक किसान ने कहा– "आजकल तो सिंचाई के साधन हो गए हैं तो लोग भूरी मिट्टी में दो फसल तक ले लेते हैं। मगर पहले इस 'माल' की भूमि पर ही हम सब निर्भर थे।"

गांव से लौटा तो मेरे मन में एक छोटा-सा सवाल परेशान कर रहा था, इस ज़मीन को 'माल' क्यों कहते हैं? उदयपुर में कुछ भूगोल के विद्वानों ने बताया कि हो सकता है यह मालवा से निकला शब्द है। मालवा में भी इस तरह की काली मिट्टी होती है। राजस्थान में जहां-जहां काली मिट्टी का इलाका है, उसे माल ही कहते हैं। मैं एक दूसरी दिशा में सोचने लगा। मुगल प्रशासनिक साहित्य में 'माल' का मतलब था लगान। हो सकता है कि इस ज़मीन से नियमित रूप से हर साल लगान मिलने के कारण इसे 'माल' कहा जाने लगा होगा।

'माल' शब्द मालवा से निकला या फारसी 'माल' से इस समस्या का निदान पिछले एक साल से नहीं हो पाया। हल निकला कुछ दिनों पहले, कालिदास के 'मेघदूतम्' में! पता चला कि मामला कुछ और ही है।

⁂

नर्मदा नदी के दक्षिण में किसी पहाड़ पर एक यक्ष रहता था। रहता क्या था उसकी मजबूरी थी। वैसे वो रहने वाला था कैलास पर्वत के पास अलकापुरी का। उसने चाकरी में कुछ लापरवाही की थी, सो उसके मालिक ने कर दिया ट्रांसफर। जगह ऐसी थी कि वह अपनी पत्नी को साथ नहीं ले जा सकता था। वियोग के कारण बेचारा बड़ा परेशान था और दुखी भी। ऐसे में आषाढ़ के प्रथम दिन उसे काले बादल दिखे। बादल को देखकर उसे ख्याल आया कि यह तो उड़कर कैलास पर्वत तक जाएगा। क्यों न उसके हाथ अपनी प्रियतमा के लिए एक संदेश भेजूं। उसने मेघ से कहा– "मित्र, तुम अलकापुरी में मेरी पत्नी को यह संदेश पहुंचाना कि मैं उसे याद कर रहा हूं और चार माह बीतने पर लौट आऊंगा।" संदेश के साथ रास्ता, पता भी बताना था। यक्ष ने विस्तार से रास्ते का विवरण दिया। नर्मदा नदी, उसके उत्तर में विदिशा, उज्जयिनी, फिर दशपुर (मंदसौर), फिर कुरुक्षेत्र और हरिद्वार होते कैलास का रास्ता।

कालिदास शायद उज्जैन का

रहने वाला था। आसपास के इलाके से भली-भांति परिचित था। इसी कारण तो मेघ को रास्ता बताते समय नर्मदा नदी से दशपुर तक के रास्ते के लिए 29 श्लोकों का उपयोग करने वाला कवि दशपुर से हरिद्वार के रास्ते को केवल तीन श्लोकों में निपटा देता है।

इसी कारण जो लोग कालिदास के काल के क्षेत्रीय भूगोल का अध्ययन करते हैं– मेघदूतम् का विशेष उपयोग करते हैं। बहरहाल हम किसी और बात पर चर्चा कर रहे थे।

मैं पिछले महीने मेघदूतम् पढ़ रहा था तो अचानक मेरी नज़र एक शब्द पर आकर रुक गई। शब्द था 'माल'। यह 16 वें श्लोक में था। नर्मदा नदी के आसपास के इलाके के रास्ते का वर्णन है। श्लोक का आनंद आप भी लीजिए:

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञै:
प्रीति स्निग्धैर्जनपदवधूलोचनै: पीयमान:।
सद्य:सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किञ्चित्पश्चाद व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण।

अर्थात् – ''खेती का फल तुम्हारे ही अधीन है, इसलिए स्नेह भरी, भ्रूविलासों से अनभिज्ञ (भोली-भाली) गांव की वधुओं की आंखों से प्यारपूर्वक देखे जाते हुए तुम तत्काल हल जोतने के कारण सोंधी 'माल' में चढ़कर कुछ समय पश्चात तेज़ी से उत्तर की ओर चल देना।''

इसमें 'माल' शब्द को कई लोग 'मालव' समझते हैं। लेकिन ऐसा अर्थ लगाने में कई समस्याएं हैं। पहली बात तो यह है कि मेघ ने अभी तक नर्मदा नदी को पार नहीं किया है, वह उसके दक्षिण में कहीं है। इसके तीन-चार श्लोकों के बाद ही नर्मदा पार करने का उल्लेख है। मालवा नर्मदा के दक्षिण में तो नहीं हो सकता है। दूसरी बात यह है कि मेघदूतम् के मध्यकालीन टीकाकार मल्लिनाथ ने इसका अर्थ दिया है– ''शैल प्रायम उन्नतस्थलम''। यानी पहाड़ों की आड़ में ऊंची भूमि। कालिदास ने 'माल' भूमि को कृषि से जोड़ा है। यह भी एक महत्वपूर्ण बात है।

इन सबको जोड़कर देखने पर गुत्थी कुछ सुलझने लगी। वास्तव में 'माल' शब्द ऊंचाई पर स्थित कृषियोग्य भूमि को सूचित करता है। आधुनिक भौगोलिक भाषा में इसे पठार या Plateau कहेंगे। अब बात स्पष्ट हुई कि 'माल' शब्द न फारसी 'माल' से उपजा है न 'मालवा' शब्द से, वह पठार के लिए प्रयुक्त एक प्राचीन शब्द है। वैसे इस अर्थ में इस शब्द का संस्कृत साहित्य में उपयोग

दुर्लभ है। संभवतः यह शब्द तमिल भाषा के 'माल' शब्द से संबंधित है। तमिल में 'माल' का अर्थ है महान, ऊंचा। और इससे ही जुड़े शब्द 'मलै' का मतलब होता है पहाड़।

अब एक नई समस्या सामने आती है – 'मालवा' शब्द को लेकर। आमतौर पर सभी विद्वान यह मानते हैं कि यह शब्द 'मालव' कबीले की भूमि से जुड़ा है। यूनानी स्त्रोतों में इन्हें पंजाब के इलाके में बसा बताया गया है। गुप्तकाल के आसपास इनके द्वारा जारी किए गए सिक्के बड़ी मात्रा में राजस्थान में (जयपुर के पास) मिलते हैं। लेकिन क्या ये लोग आज के मालवा क्षेत्र में कभी आकर बसे? इसके कोई प्रमाण नहीं मिलते हैं। तो मालवा नाम कैसे पड़ा? क्या ऊंची पठारी भूमि होने के कारण इसे 'माल' कहते थे और बाद में यह शब्द परिवर्तित होकर मालवा हो गया? यह विचार करने की बात है।

सी. एन. सुब्रह्मण्यमः एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से संबद्ध हैं।
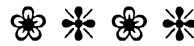
❀ ✻ ❀ ✻

इक आग का दरिया है...

कार्ल चैपक

यूनानी मिथक में प्रोमिथियस एक नायक है, जिसने देवताओं से आग चुराकर इंसानों के हवाले की थी। इस खता की सज़ा के बतौर उसे एक पहाड़ पर ज़ंजीरों के सहारे एक चट्टान से बांध दिया गया था, जहां एक गिद्ध रोज़ाना उसके जिगर को नोंचता था। इस नायक को लेकर यूनान में कई नाटक भी लिखे गए हैं।

साक्ष्य जुटाने का लम्बा अनुष्ठान संपन्न कर चुकने के और अपने सारे गले खंखार चुकने के बाद असाधारण सभा अपनी आज की बैठक से मुखातिब हुई। बैठक जो पवित्र जैतून के बाग के साए तले हो रही थी।

"तो हाज़िरीन", ऊंघते हुए महासभा के अध्यक्ष हाइपोमीथियस बोले, "इस सबने हैरान कर देने वाला वक्त ले लिया हमारा। मेरा ख्याल है मुझे दोहराने की ज़रूरत नहीं है यहां, लेकिन किसी भी उसूली एतराज़ को खारिज करने के लिए – मुजरिम प्रोमीथियस, जो कि यहां का एक बाशिंदा है और जिसे इस अदालत के सामने तलब किया गया है, उस पर इलज़ाम है – आग की ईजाद का और तिस पर – हुं हुं.... मौजूदा निज़ाम में खलल डालने का; अपना यह गुनाह कुबूल करता है। यही नहीं, वह यह भी कहता है कि वह जब चाहे तब आग पैदा कर सकता है – ऐसी तरकीब के ज़रिए जिसे सुलगाना कहते हैं। तीसरे, इस... क्या कहें... इस धधका देने वाली वारदात पर अंधेरा भी न रहने दिया इसने – सब कुछ रोशन कर दिया, जान बूझ कर। बताना ही था तो कम-से-कम माकूल अफसर को ही बताता।

लेकिन इसने न सिर्फ नामाकूल लोगों को ही यह इल्म दिया है, बल्कि इसने इस रोशनी को उनके हवाले कर दिया – उनके अपने इस्तेमाल के लिए। और इसके गवाह हैं वे सभी लोग जिन्हें हमने अभी-अभी दरयाफ्त किया। बस इतना ही। मेरा ख्याल है कि हम इसे गुनाहगार एलान कर सज़ा सुना सकते हैं''

"मुआफ कीजिएगा, मिस्टर प्रेज़िडेन्ट", गैर पेशेवर मैजिस्ट्रेट एपोमीथियस की आपत्ति थी यह, "लेकिन मैं सोचता हूं कि इस खुसूसी अदालत की अहमियत देखते हुए और भी माकूल हो, अगर हम आपसी सलाह-मशविरे और एक तरह से आम बहस-मुबाहिसे के बाद ही अपना फैसला सुनाएं।"

"जैसा आप कहें, हाज़िरीन", दोस्ताना लहज़े में हाइपोमीथियस ने अपनी सकारात्मक गर्दन हिलाई। "वैसे तो मामला एकदम उजला है लेकिन अगर आप में से कोई भी अपनी राय देना चाहे तो बिलाशक...'

"मैं यह ध्यान दिलाने की गुस्ताखी करूंगा", ट्राइब्यूनल के एक मेम्बर एमीथियस ने हौले से खांसते हुए कहा, मेरी राय में इस सारे मामले के एक पहलू पर खास ज़ोर दिया जाना चाहिए। हज़रात, मैं यहां मज़हबी पहलू की बात कर रहा हूं। मैं आपसे पूछता हूं कि यह आग आखिर है क्या? यह सुलगती चिंगारी भला क्या है? जैसा कि खुद प्रोमीथियस ने कुबूला है, यह बिजली के अलावा और कुछ नहीं, और बिजली जैसा कि हम सब जानते हैं बुलन्द आवाज़ फरिश्ते ज़्यूस (Zeus) की हैरत अंगेज़ ताकत का इज़हार है। हज़रात, क्या आप मुझे यह समझाएंगे कि प्रोमीथियस जैसा एक नाचीज़ इन्सान भला इस खुदाई आतिश तक पहुंचा कैसे? किस हक से उसने इसे अपनी गिरफ्त में लिया? कहां से मिली यह उसे? उसने हमें यह जताने की कोशिश की है कि

उसने महज इसे ईजाद किया है, लेकिन यह एक बचकानी कैफियत है – क्योंकि अगर बात इतनी ही सीधी व मासूम होती, तो हम में से किसी एक ने क्यों न खोज निकाला इसे! मुझे पूरा भरोसा है हज़रात, कि प्रोमीथियस ने यह आग बिलकुल हमारे फरिश्तों से चुराई है। उसका इन्कार, उसका छल, हमें गुमराह नहीं कर सकते। मैं उसकी खता को कुछ यों बयां करूंगा: एक मामूली-सी चोरी, लेकिन दूसरी तरफ कुफ्र और फरिश्तों के खिलाफ बगावत। हम यहां जमा हैं इस नापाक जुनून को कड़ी-से-कड़ी सज़ा सुनाने और हमारे अपने कौमी फरिश्तों की पाक मिल्कियत की हिफाज़त के लिए। मैं बस इतना ही कहना चाहता था।" अपने लबादे की किनार में बड़े जोशोखरोश से अपनी नाक सुड़कते हुए एमीथियस ने अपनी बात समेटी।

"बहुत खूब", हाइपोमीथियस सहमत हुए। "कोई और भी अपनी बात कहना चाहेगा?"

"क्षमा करें" एमोमीथियस बोले, "लेकिन मैं अपने श्रद्धेय बन्धुवर की दलील से सहमत नहीं। मैंने इस प्रोमीथियस को आग सुलगाते देखा और सज्जनों, मैं बेझिझक कह सकता हूं – हमारे ही बीच रहे यह बात – कि इसमें वाकई कुछ भी नहीं। इस आग को तो कोई भी आवारा-नाकारा बना सकता था। हम खुद ऐसा कर न सके, महज़ इसलिए कि एक संजीदा आदमी के पास वक्त कम होता है और उसके ज़ेहन में यह ख्याल तक नहीं आता कि दो पत्थर रगड़े और बना ले इक आग। मैं अपने सहयोगी एमीथियस को आश्वस्त करता हूं कि ये निहायत मामूली प्राकृतिक शक्तियां हैं जो ईश्वर तो क्या, किसी भी चिन्तक मनुष्य की गरिमा के भी पासंग नहीं और इस लायक नहीं कि वह अपना सिर इनमें खपाए। मेरी नज़र में तो आग का यह मसला इतना तुच्छ है कि इससे हमारे उन मामलों पर कोई आंच न आएगी जो पवित्र हैं हमारे लिए। लेकिन इस मामले का एक पहलू और है, जिसकी तरफ मैं अपने लब्ध-प्रतिष्ठ सहयोगियों का ध्यान खींचना चाहूंगा। ऐसा लगता है कि यह आग एक खतरनाक तत्व है, बल्कि नुकसानदेह। आपने अभी कई गवाहों के बयानात सुने जिनके मुताबिक प्रोमीथियस की इस अल्हड़ ईजाद को आज़माने में वे न सिर्फ अपने हाथ ही झुलसा बैठे, बल्कि उनकी जायदाद को भी नुकसान पहुंचा। महानुभावो, प्रोमीथियस की इस गफलत से जो यह आतिश आम-फहम हो जाए, जिस पर काबू पाना, बदकिस्मती से, अब नामुमकिन ही दीखता है.... तो न सिर्फ हमारी संपत्ति पर खतरा मंडराएगा बल्कि हमारे अपने प्राण भी इसकी लपेट में आ जाएंगे। और इस सबके

मानी महानुभावो, हमारी इस सारी सभ्यता का अंत भी हो सकता है। इसमें भला कितनी लापरवाही चाहिए – इत्ती-सी – और फिर यह शैतानी का आलम रोके से न रुकेगा। सज्जनों, प्रोमीथियस, दुनिया में इतनी खौफनाक शै लाने के गैर-ज़िम्मेदाराना काम करने का गुनाहगार है। मैं उसके इस गुनाह को गम्भीर जिस्मानी चोट पहुंचाने और अवाम की सलामती को खतरे में डालने का गुनाह मानता हूं। इस सबके मद्देनज़र मैं उसे बेड़ियों और सख्त निष्ठावन वाली उम्र कैद दिए जाने का हिमायती हूं। मेरी बात तमाम हुई, अध्यक्ष महोदय।"

"एकदम बजा फर्माया आपने हज़रत", घुरघुराते हुए हाइपोमीथियस ने कहा, "और मैं तो सिर्फ यह कहना चाहूंगा, हज़रात कि आखिर यह आग हमें चाहिए किसलिए? क्या हमारे पुरखों ने आग का इस्तेमाल किया था? ऐसी चीज़ की इज़ाद ही हमारी विरासत की जानिब तौहीनी नहीं तो क्या है, हां है, – हुं हुं... महज़ एक बगावती हरकत। आग से खेल! आपने कभी सुना!! गौर फर्माएं, हज़रात, कहां ले जाएगी यह आग हमें; लोग इसके इर्द-गिर्द सुस्ता रहे होंगे, आराम और तपिश के लिहाज़ में वे मस्ता रहे होंगे। लड़ने-भिड़ने जैसे अपने सारे फर्ज़ छोड़ कर।

मुझे तो इसका यही अंजाम दिखता है – कमज़ोरी, बदनीयती,... और हुं... चप्पा-चप्पा बेतरतीबी वगैरह-वगैरह। हमें इस बदशुगून के खिलाफ कुछ तो करना होगा। वक्त बड़ा खराब है। बेहद मनहूस। यही सब मैं जताना चाहता था।"

"बिलकुल ठीक", एंटीमीथियस ने घोषणा की, "निश्चय ही हम अपने अध्यक्ष की इस बात से सहमत हैं कि प्रोमीथियस की आतिश के अनदेखे दुष्परिणाम होंगे। साथियो, हमें इस सच्चाई से मुंह नहीं मोड़ना चाहिए कि यह (आग) एक ज़बर्दस्त शिगूफा है। किसी की पकड़ में आग – कितनी सारी संभावनाओं को रोशन कर सकती

है। इनमें से कुछेक का बेतरतीब ज़िक्र मैं यहां कर रहा हूं – अपने दुश्मनों की उपज को राख कर देना, अपने ही जैतून के बाग को लपटों के हवाले कर देना, वगैरह-वगैरह। इस आग में, सज्जनों, हमारी अवाम को एक नई ताकत मिली है, एक नया हथियार हासिल हुआ है। इसी आग पर चल कर हम अपने देवों के नियरे हो जाएंगे", एंटीमीथियस फुसफुसाए और फिर यकायक ही भभक उठे, "मैं, प्रोमीथियस पर यह इलज़ाम लगाता हूं कि उसने, इस दैवीय और दुर्निवाद तत्व को चरवाहों और गुलामों के, जिस किसी ने भी पहल की, उसके हवाले किया; उस पर मेरा इलज़ाम है कि उसने इसे अधिकृत हाथों को नहीं सौंपा, वे हाथ – जो इसकी हिफाज़त राज्य के खज़ाने के बतौर करते और इसे राज्य के उसूलों के मुताबिक चलाते। इस तरह, मेरी नज़रों में, प्रोमीथियस आग ईजाद करने वाला एक बेईमान अमानतदार ठहरता है। अमानतदार उस राज़ का, जिस पर कायदे से पुरोहितों का हक होना चाहिए था। मैं प्रोमीथियस पर अभियोग लगाता हूं", जज़्बातों की रौ में बह कर एंटीमीथियस दहाड़े, "कि उसने परदेसियों तक को यह बता दिया कि आग सुलगाते कैसे हैं। कि अपने दुश्मनों से भी इस राज़ को उसने बेपर्दा रखा। मैं प्रोमीथियस पर गहनतम राजद्रोह का अभियोग लगाता हूं। मैं उस पर समुदाय के खिलाफ साज़िश का अभियोग लगाता हूं।" एक चीख तक उठी उनकी आवाज़ बिखर कर रह गई एक खंखार में, "मैं उसके लिए मृत्युदंड का प्रस्ताव रखता हूं।" किसी तरह से वे आपे से बाहर निकल पाए।

"तो, हज़रात",

हाइपोमीथियस बोले, "क्या कोई और भी कुछ कहना चाहता है? तो अदालत की राय में मुजरिम प्रोमीथियस अव्वल तो कुफ्र और मज़हब की मुखालफत करने का खतावार ठहरता है, दूसरे उस पर संगीन जिस्मानी चोट पहुंचाने, औरों की मिल्कियत को नुकसान पहुंचाने और अवाम की सलामती को खतरे में डालने का गुनाह बनता है। और उस पर तीसरा इलज़ाम है हुकूमत से बगावत का। हाज़िरीन, मैं उसे सज़ा सुनाने की तज्वीज़ कुछ इस तरह से रखता हूं – या तो बेड़ियों और सख्त बिछौने से और भी दुश्वार बना दी गई उम्र-कैद या फिर सज़ा-ए-मौत .....हं....हं..."

"या फिर दोनों ही", एमीथियस ने कहा, "ताकि दोनों प्रस्तावों का अनुपालन हो।"

"दोनों ...... यानी?" सदर ने पूछा।

"मैं अभी इसी बात पर विचार कर रहा था", घुरघुराते हुए एमीथियस बोले, "शायद हम ऐसा कुछ कर सकते हैं. . . . उसकी बाकी बची ज़िंदगी भर उसे एक चट्टान से ज़ंजीरों से बंधे रहने का दंड .... या शायद उसके विधर्मी कलेजे को गिद्धों द्वारा चुग-चुग कर निकाल बाहर फेंकने का दंड .... महामहिम मेरा आशय समझे?"

"हां, अब ठीक है", सौम्य भाव से महामहिम बोले, "साथियो, एक मिसाली सज़ा होगी यह .... हुं हुं ... खब्ती गुनाह की .... कोई एतराज़ नहीं? तो मीटिंग बरखास्त होती है।"

*

"लेकिन आपने प्रोमीथियस को मौत की सज़ा क्योंकर सुनाई, पिताजी?", रात के खाने पर प्रोमीथियस के पुत्र, एपीमीथियस का सवाल था यह।

"तुम नहीं समझोगे", भेड़ की टांग चबाते हाइपोमीथियस भुनभुनाए, "कसम से! भुना हुआ मांस कच्चे मांस से कहीं ज़्यादा लज़ीज़ है; तो देखा तुमने, यह आग भी किसी काम की ठहरी आखिर; और यह सब था अवाम की खातिर; समझ में आया तुम्हें? हम बेठौर न हो जाएं! अगरचे कोई ऐरा-गैरा, जिसका मन किया, नई-नई ईजाद करता जाए – बिना कोई सज़ा पाए!! मेरा मतलब समझे? लेकिन अभी भी इस मांस को किसी चीज़ की ज़रूरत है–

ओह! मैं समझा।", वे चहके।

'एपोक्रिफल स्टोरीज़ – कार्ल चैपक' से साभार, मूल कथा अंग्रेज़ी में। **अनुवाद – मनोहर नोतानी**; मनोहर भोपाल में रहते हैं और स्वतंत्र रूप से अनुवाद के काम में सक्रिय हैं।

इस लेख के सभी रेखाचित्र **आमोद कारखानिस** ने बनाए हैं; आमोद पेशे से कम्प्यूटर विज्ञानी हैं और शौकिया तौर पर चित्र बनाते हैं; वे बंबई में रहते हैं।

दिगंतर

एडवान्स्ड प्रोग्राम इन फाउन्डेशन ऑफ एड्युकेशन

शिक्षा में किसी भी स्तर पर काम करने के लिए इसकी सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक समझ बहुत आवश्यक है। दिगन्तर का अकादमिक संदर्भ केन्द्र शिक्षा के आधारभूत क्षेत्रों में अध्ययन का एक नया कोर्स आरंभ कर रहा है। यह कोर्स उन सभी लोगों के लिए उपयोगी होगा जो शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के योगदान दे रहे हैं। उदाहरणार्थ शिक्षक प्रशिक्षक, शिक्षाक्रम विकास, शैक्षिक समन्वयक तथा नीति निर्धारण संबंधी काम करने वाले लोग।

पाठ्यक्रम की विशेषताएं

* अध्ययन के क्षेत्र: शिक्षा – चिंतन, संस्कृति, समाज एवं बच्चों के बारे में चिंतन, सीखने के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत, मानवीय समझ, शाला एवं शिक्षाक्रम, ऐच्छिक कोर्स एवं एक स्वतंत्र अध्ययन।
* विधियां: फील्ड विज़िट और अवलोकन, मूल लेख का अध्ययन, बच्चों के साथ काम करना, सेमीनार, व्याख्यान और विचार-विमर्श।
* संकाय: स्थाई संकाय और लब्ध-प्रतिष्ठ आमंत्रित संकाय जिसमें शामिल हैं: प्रो. कृष्ण कुमार, डॉ. साधना सक्सेना, डॉ. शारदा जैन, प्रो. सी. जे. दासवानी, प्रो. मोहम्मद तालिब, प्रो. रमाकांत अग्निहोत्री, प्रो. श्याम मेनन, डॉ. पोरोमेश आचार्य आदि।
* दो सत्रों में छह माह का पाठ्यक्रम: जून से अगस्त; अक्टूबर से दिसंबर।
* पूर्णकालिक आवासीय।
* शुल्क: अध्ययन, भोजन एवं आवास के लिए।
* सुविधाएं: पुस्तकालय एवं छात्रावास।
* माध्यम: द्वि भाषी (हिन्दी और अंग्रेज़ी)।

इस पाठ्यक्रम में भाग लेने वाले व्यक्तियों को प्रयोजित करने में रुचि रखने और अपने यहां से व्यक्तियों को भेजने वाले संस्थानों एवं इच्छुक व्यक्तियों की ओर से पूछताछ आमंत्रित है। विवरणिका के लिए कृपया स्वयं का पता लिखा और 3 रुपए के डाक टिकट लगा लिफाफा भेजें।

समन्वयक
अकादमिक संदर्भ केन्द्र, दिगन्तर
टोडी रमजानपुरा, जगतपुरा
जयपुर 302017
फोन: 0141 – 521824
ई-मेल: digantar @ hotmail. com

दिगन्तर प्रारंभिक शिक्षा के फैलाव एवं गुणवत्ता में सुधार के लिए कार्यरत संस्था है। यह जयपुर के दक्षिण -पश्चिमी ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों के लिए तीन निशुल्क विद्यालय चलाती है। इसके साथ-साथ दिगन्तर विभिन्न सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थानों द्वारा संचालित शैक्षिक कार्यक्रमों को संदर्भ सहायता भी देती है।

पुस्तक अंश

गोल हुआ भूगोल

लेव तोलस्तोय
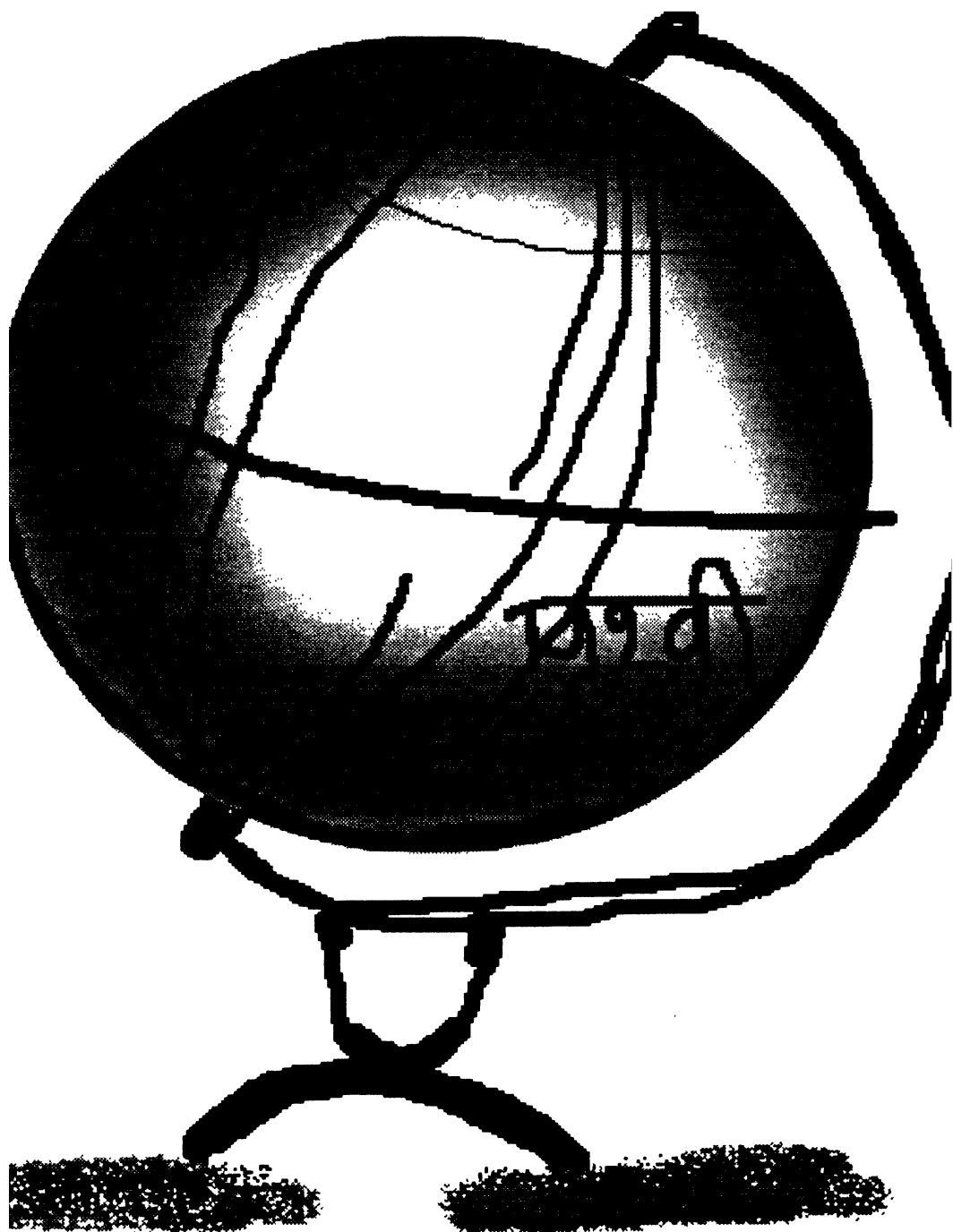
भूगोल के अध्यापन में सबसे पहले मैंने प्राकृतिक भूगोल को लिया। पहला पाठ मुझे अभी तक याद है। मैंने उसे शुरू ही किया था कि गड़बड़ा गया। हुआ वह, जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। यानी कि जिस चीज़ के बारे में मैं चाहता था कि दस वर्षीय किसान बच्चे जानें, उसके बारे में मैं खुद नहीं जानता था। दिन और रात क्या होते हैं, यह समझाना तो मैं जानता था, पर शीत और ग्रीष्म ऋतुओं के बारे में गड़बड़ा गया। अपने अज्ञान पर शर्माकर मैंने कहे हुए को ही फिर से दोहराया और बाद में अपने बहुत से परिचित, शिक्षित लोगों से भी पूछा, मगर हाल ही में स्कूल से निकले लोगों या अध्यापकों के अलावा कोई भी मुझे ग्लोब की मदद के बिना ठीक से नहीं बता सका। पाठक चाहें, तो खुद इसकी आज़माइश करके देख सकते हैं। मेरा दावा है कि सौ में से सिर्फ एक आदमी ही उसे जानता है, जबकि पढ़ने सभी बच्चे जाते हैं। मन ही मन भली भांति याद करके मैं फिर से समझाने लगा और मोमबत्ती और ग्लोब की मदद से — जैसा कि मुझे लगा — बहुत अच्छा समझाया। बच्चों ने मुझे बड़े ध्यान और चाव से सुना। (उन्हें वह जानने में खास दिलचस्पी थी, जिस पर उनके पिता यकीन नहीं करते, ताकि मौका आने पर अपनी बुद्धिमत्ता की शेखी बघारी जा सके।)

जब मैं शीत और ग्रीष्म ऋतुओं के बारे में बताना खत्म कर रहा था, संशयवादी स्योम्का ने, जो सबसे जल्दी समझ जाता है, मुझसे सवाल पूछा: "ऐसा कैसे है कि पृथ्वी तो घूमती है और हमारी झोंपड़ी वहीं की वहीं खड़ी रहती है? उसे भी तो अपनी जगह से हट जाना चाहिए।" तो मैंने देखा कि कक्षा में जो सबसे तेज़ छात्र था, अपने समझाने के तरीके में मैं उससे भी खूब आगे निकल गया था। ऐसे में सबसे भोंदू भला क्या खाक समझे होंगे?

मैं पीछे लौटा, फिर से विस्तार से समझाया, तस्वीरें बनाकर दिखाईं। पृथ्वी के गोल होने के सभी सबूत पेश किए, जैसे पृथ्वी के गिर्द यात्रा, सबसे पहले जहाज़ का मस्तूल दिखाई देना, वगैरह; और यह सोचकर कि अब तो समझ गए होंगे, मैंने उन्हें वह सब लिख लेने को कहा, जो मैंने बताया था। उन्होंने जो लिखा उससे पता चला कि उनके लिए सबूतों को याद कर लेना ही मुख्य चीज़ था। दसियों ही नहीं, सैंकड़ों बार मैंने सभी बातें फिर से बताईं, पर हर बार नाकामयाबी ही हाथ लगती।

परीक्षा में और अब भी शायद सभी विद्यार्थी संतोषजनक उत्तर देते। मगर मुझे लगता है कि वे समझे नहीं, और यह याद करके कि मैं भी तीस वर्ष की आयु तक ठीक से नहीं समझ पाया था, मैंने उनकी यह नासमझी माफ कर दी। जैसे बचपन से मेरे साथ हुआ था, उसी तरह अब वे भी बिना कुछ समझे इन शब्दों में विश्वास कर ले रहे थे कि पृथ्वी गोल है, वगैरह, वगैरह। मेरे लिए तो समझना फिर भी अपेक्षाकृत आसान था, क्योंकि धाय-मां ने बहुत छोटी उम्र में ही मेरे मन में यह बात बिठा दी थी कि जहां दुनिया खत्म होती है, वहां पृथ्वी और आकाश एक दूसरे से मिलते हैं। और वहां, पृथ्वी के छोर पर औरतें समुद्र में कपड़े धोती हैं और मुंगरियों को बाद में उठाकर आकाश पर रख देती हैं। हमारे विद्यार्थी उस उम्र को कभी का पार कर चुके हैं और उनकी जो धारणाएं पक्की हो चुकी हैं, वे उन बातों से बिल्कुल उल्टी हैं जो मैं उन्हें सिखाना चाहता हूं। उनके जो तर्क हैं, उन्हें ध्वस्त करने के लिए और विश्व के बारे में बने हुए दृष्टिकोण को नष्ट करने के लिए अभी बहुत समय कोशिशें करते रहना होगा; तब जाकर ही वे समझ पाएंगे। भौतिकी और यांत्रिकी के नियम ही वह पहली चीज़ हैं, जो इन पुराने दृष्टिकोणों को जड़ से नष्ट करेगी। लेकिन मेरी तरह और दूसरों की तरह उन्होंने भी भौतिकी से पहले प्राकृतिक भूगोल को पढ़ना शुरू कर दिया।

क्यूं इतनी जल्दी

अन्य विषयों की भांति भूगोल के अध्यापन में भी जो सबसे आम, भद्दी और बुरी गलती की जाती है – वह है जल्दबाज़ी। जैसे कि हम इस बात से बेहद खुश हो जाते हैं कि हम जानते हैं कि पृथ्वी गोल है तथा सूर्य के गिर्द घूमती है, और यह बात जितनी जल्दी हो सके, विद्यार्थियों को बता डालना चाहते हैं। मगर महत्वपूर्ण यह जानना नहीं है कि पृथ्वी गोल है, बल्कि यह जानना है कि इस निष्कर्ष पर हम कैसे पहुंचे। बहुत बार बच्चों को बताया जाता है कि सूर्य पृथ्वी से इतने अरब वर्स्ट (दूरी नापने की रूसी इकाई) दूर है, मगर बच्चे के लिए इसमें आश्चर्य और दिलचस्पी की कोई बात नहीं होती। वह तो जानना चाहता है कि यह बात मालूम कैसे की गई।

फिर मैंने पृथ्वी की गोलाई के बारे में विस्तार से इसलिए बताया कि उसके बारे में जो कहा गया है, वह सारे ही भूगोल पर लागू होता

है। एक हज़ार शिक्षित लोगों में से अध्यापकों और विद्यार्थियों को छोड़कर सिर्फ एक ही यह ठीक से जानता है कि सरदियां और गरमियां क्यों होती हैं। पृथ्वी गोल क्यों है, इस बात को बचपन में कोई भी नहीं समझ पाता, हालांकि सिखाया यह सबको जाता है।

प्राकृतिक भूगोल के बाद मैंने पृथ्वी के विभिन्न भागों और उनकी विशेषताओं के बारे में बताना शुरू किया, और इसमें से भी सिवाए इसके कुछ बाकी नहीं बचा कि पूछे जाने पर सब बढ़-चढ़कर चिल्लाते हैं: एशिया, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया! पर अगर एकाएक पूछें कि फ्रांस विश्व के किस भाग में है (एक ही मिनट पहले बताया गया था कि इंगलैंड और फ्रांस यूरोप में हैं), तो जवाब में सुनने को मिलेगा कि फ्रांस अफ्रीका में है। जब भी हम भूगोल पढ़ाना शुरू करते हैं, हर बुझी-बुझी निगाह, कंठ से निकली हर आवाज़ एक ही प्रश्न पूछती प्रतीत होती है: किसलिए? और इस विषादजनक प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है।

स्कूल के कमरे से

अंत से शुरू करने का मामूली विचार जैसे इतिहास के अध्यापन में पैदा हुआ, वैसे ही भूगोल का अध्यापन भी स्कूल के कमरे से, अपने गांव से शुरू करने का मामूली विचार पैदा हुआ। मैंने ये प्रयोग जर्मनी में देखे थे और सामान्य ढंग से भूगोल के अध्यापन की असफलता से हतोत्साहित होकर खुद भी कमरे, घर, गांव का वर्णन करने लग गया। नक्शे खींचने की तरह ये अभ्यास भी निरर्थक नहीं है, मगर यह जानना कतई दिलचस्प नहीं है कि हमारे गांव के बाद क्या है? क्योंकि सभी विद्यार्थी जानते हैं कि वहां तेल्यातीन्की है। और तेल्यातीन्की के बाद क्या है? यह जानना भी दिलचस्प नहीं है, क्योंकि वहां भी तेल्यातीन्की जैसा ही कोई गांव होगा। और तेल्यातीन्की तथा उसके खेत बिल्कुल भी दिलचस्प नहीं हैं।

मैंने उन्हें मॉस्को और कीयेव जैसी महत्वपूर्ण भौगोलिक जगहों के बारे में बताने की कोशिश की, मगर यह सब उनके दिमाग में इतने क्रमहीन ढंग से बैठा कि उन्होंने सब कुछ रट ही डाला। मैंने नक्शे बनाकर भी दिखाए। यह उन्हें रोचक लगा और सचमुच इससे याद रखने में मदद मिली। पर पुनः प्रश्न पैदा हुआ याद रखने में मदद क्यों की जाए? मैंने उन्हें एक बार फिर ध्रुवक्षेत्रीय और विषुवतीय देशों के बारे में बताकर देखा। उन्होंने मज़े के साथ सुना और सुनाया भी, पर

इन कहानियों में उन्हें और सब कुछ याद रहा, सिवाए उसके कि जो भूगोल से संबंध रखता था। मुख्य बात यह थी कि उनके लिए गांवों के नक्शे भूगोल नहीं, बल्कि

कहानियां थीं। भूगोल से मिलती-जुलती सिर्फ एक किताब ऐसी थी, जो थोड़ी-बहुत रोचक थी, हालांकि उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं है। मैं समझता हूं कि यह किताब इसकी सर्वोत्तम मिसाल है कि बच्चों को भूगोल की पढ़ाई के वास्ते तैयार करने और उनमें भौगोलिक रुचि जागृत करने के लिए क्या किया जाना चाहिए।

विद्यार्थियों के लिए किसी भी घटना की रोचकता की कसौटी यह नहीं होती कि वह इतिहास में कितना महत्व रखती है, बल्कि यह होती है कि इतिहासकार ने – और ज़्यादातर मामलों में तो लोक परंपरा ने – उसे कितने कलात्मक

ढंग से प्रस्तुत किया है।

रोचकता की ज़रूरत

रोमुलस और रीमस का इतिहास इसलिए रोचक नहीं है कि इन भाइयों ने विश्व के एक सबसे शक्तिशाली राज्य की स्थापना की थी, बल्कि इसलिए रोचक है कि उन्हें मादा भेड़िया द्वारा दूध पिलाए जाने, आदि की कहानियां बड़ी मज़ेदार, आश्चर्यजनक और सुंदर लगती हैं। ग्राकस बंधुओं का इतिहास अपनी कलात्मकता के कारण दिलचस्प है। इसी तरह ग्रेगोरी सातवें और मारे गए सम्राट के इतिहास में भी रोचकता के सभी तत्व मौजूद हैं। मगर जातियों के महादेशांतरण के इतिहास में कोई मज़ा नहीं आएगा और वह निरर्थक भी होगा, क्योंकि उसकी विषयवस्तु में कलात्मकता नहीं है; ठीक वैसे ही कि जैसे मुद्रण के आविष्कार के इतिहास में भी नहीं है, चाहे हम विद्यार्थी को कितना भी विश्वास क्यों न दिलाएं कि यह इतिहास में एक पूरे युग का प्रतिनिधित्व करता है और गुटेनबर्ग एक महान व्यक्ति था। अगर आप अच्छे, रोचक ढंग से बताएंगे कि दियासलाई कैसे ईजाद हुई थी, तो विद्यार्थी कभी नहीं मानेगा कि दियासलाई का आविष्कारक गुटेनबर्ग से कम महान आदमी था।

संक्षेप में, बच्चे के लिए, या कहें तो विद्यार्थी के लिए, जिसने जीवन अभी शुरू भी नहीं किया है, सामान्य मानवीय रुचि की तो बात ही क्या, ऐतिहासिक रुचि नाम की भी कोई चीज़ नहीं है। जो है, वह सिर्फ कलात्मक रुचि है।

कहते हैं कि सभी कालों के इतिहास को कलात्मक ढंग से पेश किया जा सकता है। मगर मैं इससे सहमत नहीं हूं। इतिहास को लोकप्रिय बनाने के लिए कलात्मक आवरण नहीं चाहिए, बल्कि जैसे कि कभी-कभी परंपरा, स्वयं जीवन और महान विचारक तथा कलाकार करते हैं, इतिहास की परिघटनाओं को सजीव बनाने की ज़रूरत है। बच्चों को इतिहास तभी पसंद आता है, जब उसकी अंतर्वस्तु में कलात्मकता का पुट होता है। उनके लिए ऐतिहासिक रुचि का कोई अस्तित्व नहीं है और न ही हो सकता है, और इसलिए बाल इतिहास नाम की भी न कोई चीज़ है, न ही हो सकती है।

इतिहास कलात्मक विकास के लिए सामग्री का काम कभी-कभार ही करता है, और जब तक ऐतिहासिक रुचि विकसित नहीं होती, इतिहास का प्रश्न भी नहीं

उठ सकता।

यही बात भूगोल के संबंध में भी है। जब मित्रोफानुश्का से भूगोल सीखने को कहा गया, तो उसकी अम्मा बोली, "सारी दुनिया को जानकर क्या मिलेगा? कहीं जाना होगा, तो गाड़ीवान खुद ले जाएगा।" भूगोल के विरुद्ध इससे ज़्यादा कड़ी बात कोई नहीं कही गई है और दुनिया का कोई भी विद्वान ऐसी अकाट्य दलील का जवाब नहीं दे सकता। मैं यह पूरी गंभीरता से कह रहा हूं। मुझे बार्सीलोना नदी और नगर की स्थिति को जानने की क्या ज़रूरत थी, अगर 33 वर्ष तक एक बार भी यह ज्ञान मेरे किसी काम नहीं आया?

जहां तक मैं समझता हूं, मेरी आत्मिक शक्तियों के विकास में बार्सीलोना और उसके निवासियों का सबसे सुंदर चित्रण भी सहायक नहीं हो सकता था। स्योम्का और फेद्का को पीटर्सबर्ग के जलमार्गों को जानने की क्या ज़रूरत है, अगर जैसी कि संभावना है, वे वहां कभी नहीं जा पाएंगे? अगर स्योम्का का वहां कभी जाना होगा भी, तो उसे इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा कि उसने यह स्कूल में पढ़ा था या नहीं, क्योंकि तब इन जलमार्गों को वह व्यवहार में जान ही जाएगा और अच्छी तरह जान जाएगा। मैं नहीं समझ सकता कि उसकी आत्मिक शक्तियों के विकास में इस बात की जानकारी से कोई मदद मिल सकती है कि वोल्गा में सन से लदे जहाज़ नीचे की ओर जाते हैं और अलकतरे से लदे जहाज़ ऊपर की ओर; कि दुबोब्का नाम का एक बंदरगाह है; कि फलां भूमिगत परत फलां जगह तक जाती है; कि सामोयेद लोग बारहसिंगा गाड़ियों पर सफर करते हैं, वगैरह-वगैरह।

मेरे पास गणित, प्रकृति, भाषा और कविता से संबंधित ज्ञान का एक पूरा भंडार है, जिसे देने के लिए मुझे पूरा वक्त नहीं मिल पाता। फिर मेरे परिवेशी जीवन द्वारा उठाए गए अनगिनत प्रश्न भी हैं, जिनका विद्यार्थी उत्तर चाहता है; और जिनका उत्तर देने से पहले ज़रूरी है कि मैं उसे ध्रुवक्षेत्रीय बर्फ, उष्णकटिबंधीय देशों, ऑस्ट्रेलिया के पहाड़ों, अमरीका की नदियों, आदि से परिचित कराऊं।

इतिहास और भूगोल में अनुभव एक ही बात कहता है और हर कहीं हमारे विचारों की पुष्टि करता है। हर कहीं भूगोल और इतिहास गलत ढंग से पढ़ाए जाते हैं, परीक्षाओं के कारण पहाड़ों, नगरों और नदियों को, राजाओं और महाराजाओं को रट लिया जाता है। हर कहीं इन विषयों के अध्यापन पर असंतोष

दिखाया जाता है, नए की तलाश की जाती है और तलाश असफल रहती है। मज़े की बात तो यह है कि सभी मानते हैं कि भूगोल में अपेक्षाओं और सारी दुनिया के स्कूली विद्यार्थियों की भावना के बीच सामंजस्य नहीं है। और इसके नतीजे के तौर पर बच्चों को ये शब्द याद करवाने के हज़ारों विलक्षण उपाय सोचे जाते हैं। जबकि यह बहुत मामूली विचार किसी को भी नहीं सूझता कि इस भूगोल की, इन शब्दों की कोई आवश्यकता नहीं है; कि इन शब्दों को जानना कतई ज़रूरी नहीं है। भूगोल को भूविज्ञान, प्राणिविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, नृजातिवर्णन, और दूसरे भी न जाने किन-किन विज्ञानों से जोड़ने की, इतिहास की जीवनकथाओं से जोड़ने की सभी कोशिशें खोखले सपने हैं। ये ऐसी घटिया किताबों को जन्म देते हैं, जो न बच्चों के काम की हैं, न किशोरों के और न अध्यापकों का कोई मतलब हल करती हैं, और न आम जनता का ही। सच तो यह है कि अगर भूगोल और इतिहास की इन तथाकथित नई किताबों के लेखक एक क्षण के लिए भी सोचते कि वे चाहते क्या हैं, और स्वयं इन किताबों के आधार पर पढ़ाकर देखते, तो उन्हें मालूम हो जाता कि उनकी सारी मेहनत कितनी व्यर्थ थी।

पहली बात तो यह है कि प्राकृतिक विज्ञानों और नृजातिवर्णन के साथ जोड़ने से भूगोल एक ऐसा अत्यंत बोझिल विज्ञान बन जाएगा कि जिसके अध्ययन के लिए सारा जीवन भी पूरा नहीं पड़ेगा और जो बच्चों की समझ में अकेले भूगोल से भी कम आएगा और ज़्यादा शुष्क होगा। दूसरे, ऐसी किताब लिखने के लिए शायद हज़ार साल बाद ही पर्याप्त सामग्री मिल सकेगी। *क्रापीब्ना उयेज्द* में भूगोल पढ़ाते हुए मैं विद्यार्थियों को उत्तरी ध्रुव के जीव तथा वनस्पति जगत तथा भूवैज्ञानिक बनावट के बारे में विस्तार से बताने को बाध्य होऊंगा, क्योंकि इसके लिए मेरे पास आवश्यक सामग्री होगी। जबकि पड़ोस के ही उयेज्दों के बारे में लगभग कुछ नहीं बता सकूंगा, क्योंकि इसके लिए कोई सामग्री नहीं होगी। मगर बच्चे और सामान्य बुद्धि मुझसे अध्यापन में संतुलन बनाए रखने की अपेक्षा करते हैं।

विकल्प यही रह जाता है कि या तो पाठ्यपुस्तक में जो लिखा है, उसे आंख मूंदकर पढ़ाऊं, या बिल्कुल भी न पढ़ाऊं। जैसे इतिहास के लिए ऐतिहासिक रुचि जागृत की जानी चाहिए, ठीक वैसे ही भूगोल के लिए भौगोलिक रूचि जगायी

जानी चाहिए। और मैंने पाया है कि भौगोलिक रुचि या तो प्राकृतिक विज्ञानों द्वारा जगाई जाती है, या फिर यात्राओं द्वारा। वैसे 100 में से 99 मामलों में भौगोलिक रुचि यात्राओं का परिणाम होती है। जिस प्रकार अखबार और मुख्यतः जीवनियां पढ़ना और अपनी मातृभूमि के राजनीतिक जीवन में रुचि लेना इतिहास के अध्ययन की दिशा में पहले कदम का काम करते हैं; वैसे ही यात्राएं भूगोल के अध्ययन के लिए पहले कदम का काम करती हैं। आज के युग में अखबार, आदि पढ़ना और यात्राएं सबके लिए सुलभ और सुगम बन गए हैं और इसलिए हमें इतिहास और भूगोल के अध्यापन से संबंधित पुराने विश्वास को छोड़ने से डरना चाहिए। इस मामले में आज जीवन स्वयं इतना शिक्षाप्रद है कि अगर वास्तव में भूगोल और इतिहास का ज्ञान सामान्य विकास के लिए इतना आवश्यक होता, जितना कि हमें लगता है, तो जीवन सदा इस कमी को स्वयं पूरी कर देगा. . .। आज खगोलशास्त्र, अलंकारशास्त्र, काव्य-शास्त्र, लैटिन, आदि नहीं पढ़ाए जाते। मगर इससे मानवजाति पहले से ज़्यादा मूर्ख नहीं हो गई है। नए विज्ञान पैदा हो रहे हैं। प्राकृतिक विज्ञान लोकप्रिय बनने लगे हैं। विलोप पुराने विज्ञानों का, या अगर ठीक-ठीक कहें तो विज्ञानों के उन पहलुओं का भी होना चाहिए, जो नए विज्ञानों के आविर्भाव के कारण निरर्थक बन गए हैं।

रुचि जगाना, यह जानना कि विभिन्न देशों में लोग कैसे रहते हैं, कैसे रहते थे, कैसे पैदा हुए तथा बढ़े? उन नियमों के ज्ञान में रुचि जगाना, जिनसे मानवजाति हमेशा निदेशित होती है, और दूसरी ओर, सारे भूमंडल पर प्रकृति की घटनाओं के नियमों और मानववंश के प्रसार के नियमों को समझने में रुचि जगाना दूसरी बात है। मैं इसके लिए दो ही उपाय जानता हूं : कविता की कलात्मक अनुभूति और देशप्रेम। इन दोनों को विकसित करने के लिए अभी कोई पाठ्यपुस्तकें नहीं लिखी गई हैं, और जब तक वे नहीं हैं, हमें इसके तरीके खोजने चाहिए, न कि युवा पीढ़ी को मात्र इसलिए ही भूगोल तथा इतिहास सीखने पर विवश करना और अपने समय और शक्ति का अपव्यय करना चाहिए कि हमें इतिहास और भूगोल सिखाया गया था।

लेव तोलस्तोय: प्रसिद्ध रूसी साहित्यकार और शिक्षाशास्त्री। जन्मः 1828 और मृत्युः 1910

लेव तोलस्तोय – शिक्षाशास्त्रीय रचनाएं, प्रगति प्रकाशन, मॉस्को द्वारा 1987 में प्रकाशित।

किंग कोबरा

के. आर. शर्मा

हो सकता है कि किसी सपेरे की पिटारी में आपने नागराज को देखा हो। लेकिन जंगल में इसका दिख जाना किसी भय से कम नहीं होगा। आखिर इसीलिए तो इसे नागराज की उपाधि मिली हुई है। मैंने सपेरे की पिटारी में जिस नागराज को देखा था उसकी लंबाई करीब 11 फीट होगी (ज़रा फोटो देखिए)। बाद में जब इसके बारे में पढ़ा तो पता लगा कि अभी तक 18 फीट लंबे नागराज के पाए जाने के सबूत हैं। इसे फन उठाकर खड़े देखना एक अद्‌भुत दृश्य होता है। उस स्थिति में यह अपनी लंबाई के लगभग एक तिहाई के बराबर खड़ा हो जाता है।

यह नमी और घनी बरसात वाले क्षेत्रों में रहने का आदी है। हमारे देश में यह पश्चिमी घाट के नम घने जंगलों में, उड़ीसा, असम और बंगाल के सुंदरवन में नदी के मुहानों व मेंग्रोव के दलदल वाले क्षेत्रों, हिमालय के गिरिपाद आदि में पाया जाता है।

भोजन

इसके भोजन की सूची भी कम रोचक नहीं है। मूलतः मांसाहारी नागराज सांपों को खाना पसंद करता है। यह सभी तरह के सांपों, यहां तक की ज़हरीले सांप भी खा जाता है। इसीलिए संस्कृत में इसे 'भुजंग भुक' की उपाधि मिली है, जिसका मतलब है सांपों को खाने वाला।

मैंने सपेरे से पता किया कि वे लोग इसकी उदरपूर्ति के लिए धामन और पानी के सांप पकड़ते फिरते हैं।

नागराज उन सांपों को नहीं खाता जिनके विषदंत बड़े होते हैं। कभी कभी यह कुछ खास तरह की छिपकलियों को भी खा जाता है। यह अपने से छोटे अजगर को भी खा जाता है। नागराज खुद एक विषैला और चपल सांप है। इसका विष नाग के विष से कम घातक होता है लेकिन जब यह डसता है तो काफी मात्रा में विष शरीर के अंदर छोड़ता है। और यह मात्रा ही इसे खतरनाक बनाती है।

अंडे देना

अंडे देने से पहले यह पत्तियों या इसी तरह की सामग्री का करीब 30 से.मी. ऊंचा घोंसला बनाते हैं। मादा अप्रैल से जुलाई के बीच इसमें अंडे देती है। अंडों से बच्चों के निकलने में करीब दो से तीन माह का समय लगता है। इस बीच मादा घोंसले की मुस्तैदी से रखवाली करती है। वैसे इसके लैंगिक संबंधों के बारे में काफी कम जानकारी है।

नागराज की उम्र करीब बारह वर्ष की होती है। वैसै यह काफी सौम्य और शांत प्रकृति का सांप है। लेकिन खेदजनक पहलू है कि इसका जीवन भी संकट में पड़ा हुआ है क्योंकि जंगलों की कटाई के कारण इसका रहवास बरबाद हुआ जा रहा है।

के. आर. शर्मा: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध।

नागराज के दो और चित्र अगले पेज पर

सभी फोटोग्राफ: के. आर. शर्मा
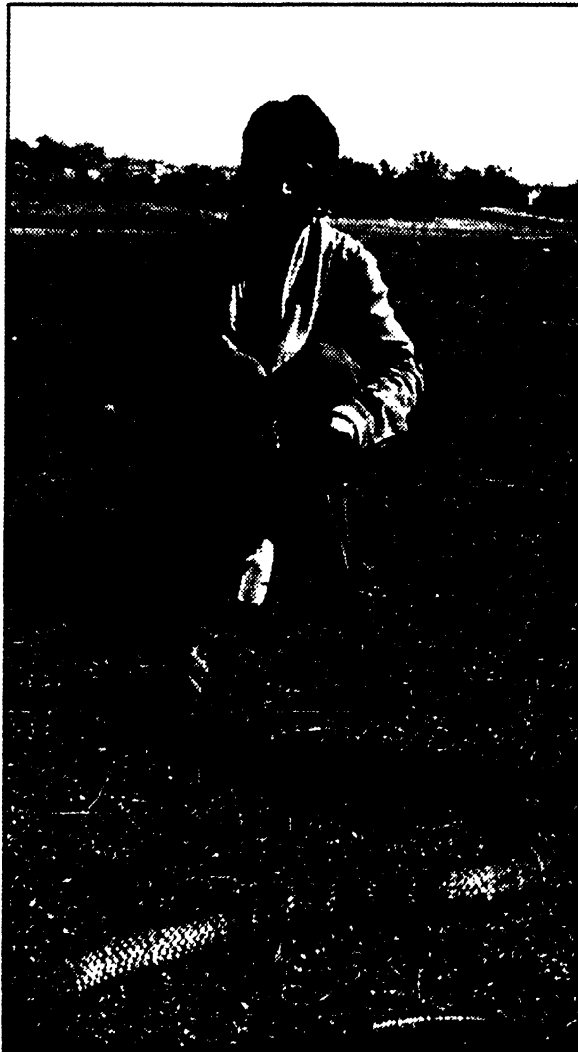
फोटोग्राफ: किंग कोबरा की सपेरे के साथ दो मुद्राएं। किंग कोबरा के आकार के बारे में आपकी समझ को पुख्ता करने के लिए काफी होंगी।

प्रवासी मछली हिलसा

किसी बंगाली से पूछिए कि हिलसा क्या है – नाम सुनते ही उसके मुंह में पानी न आ जाए तो कहिएगा। खैर हम यहां इसके सुस्वादुपन पर नहीं जा रहे हैं।

कुछेक अंकों पहले आपने संदर्भ में जंतुओं के प्रवास से संबंधित लेखों में पढ़ा होगा कि न सिर्फ पक्षी बल्कि तितलियां और मछलियां भी प्रवास करती हैं। और हमारे देश में हिलसा एकमात्र मछली है जो प्रवास करती है और प्रजनन के समय समुद्र और एस्च्युरी से नदियों में आती है।

जुलाई-अगस्त में मानसून के समय हिलसा के झुंड-के-झुंड बढ़ चलते हैं गंगा, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी, कृष्णा, नर्मदा आदि नदियों की ओर। इस प्रवास में इन्हें नदियों के प्रवाह के विपरीत तैरना पड़ता है। मादा हिलसा एक मौसम में 2,80,000 से 18,00,000 तक अंडे देती है लेकिन मृत्यु दर बहुत ज़्यादा होने के कारण वयस्क अवस्था तक काफी कम ही पहुंच पाते हैं।

पहले यह मछली प्रवास के मौसम में गंगा में कानपुर तक और यमुना में आगरा तक आ जाती थी। इसी तरह हिलसा नर्मदा में मुहाने से 160 किलोमीटर भीतर तक पाई गई है। लेकिन अधिकतर नर्मदा के मुहाने से 70 किलोमीटर के भीतर ही अंडे देती हैं। वैसे देखा जा रहा है कि हिलसा का यह प्रवास लगातार उतार की ओर है। पर्यावरण संबंधी कुछ समस्याएं इसकी वजह बताई जा रही हैं।
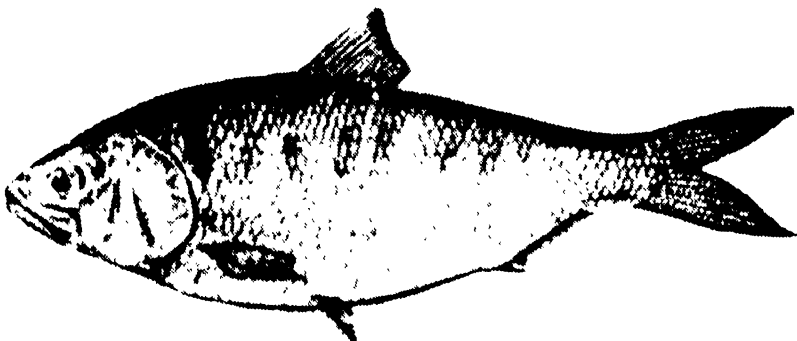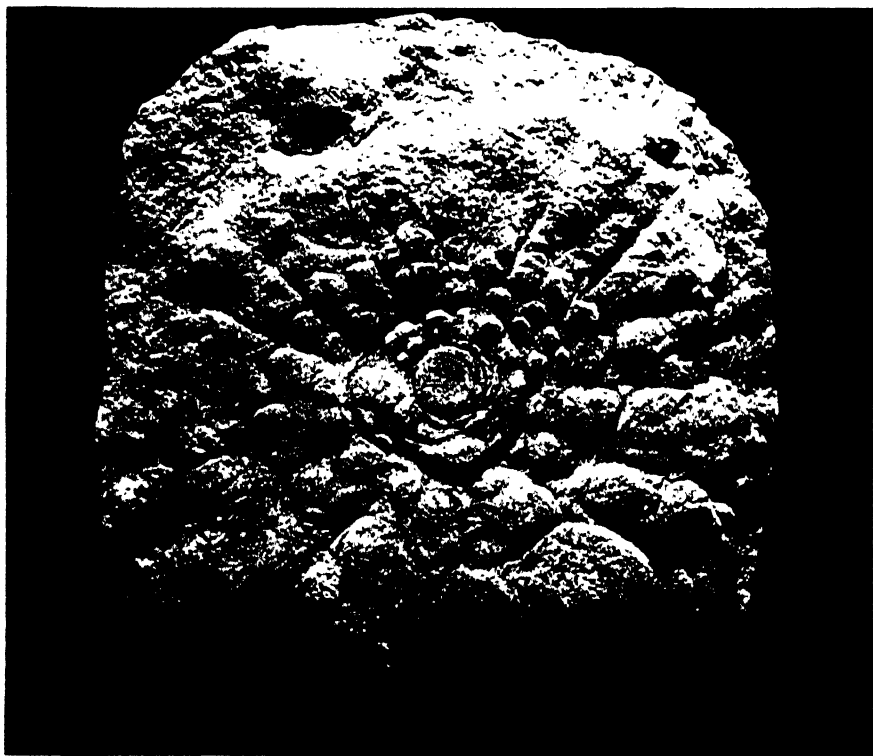
एकलव्य की ओर से राजेश खिन्दरी द्वारा भंडारी ऑफसेट प्रिंटर्स, ई-3/12, अरेरा कालोनी, भोपाल से मुद्रित एवं एकलव्य ई-1/25, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016 से प्रकाशित। संपादक - राजेश खिन्दरी।